उत्तरी भारत की संत परम्परा

(Saint Tradition of Northern India)

विधान सिंह

उत्तरी भारत की संत परंपरा

उत्तरी भारत की संत परंपरा

(Saint Tradition of Northern India)

विधान सिंह

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-5638-7

प्रथम संस्करण : 2021

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

समाज संत में यह देखता है कि उसमें श्रेष्ठता है या नहीं, संयम है या नहीं। संत में दूसरों की भलाई करने की भावना है या नहीं। लोग संत में सभी गुण खोजते हैं। संतों को परखा जाता है। लोग यह नहीं देखते कि संत को गाड़ी चलाना आता है या नहीं, कम्प्यूटर चलाना आता है या नहीं, संत को प्रबंधन चलाना आता है या नहीं। संत हैं तो संतत्त्व होना चाहिए।

आज हमें यह जानना होगा कि संत का सही स्वरूप क्या होता है। जब वह अपने ज्ञान द्वारा ईश्वर को समझ लेता है, अपनी भक्ति द्वारा ईश्वर को प्राप्त कर लेता है, अपनी शरणागति द्वारा ईश्वर को प्राप्त कर लेता है और उसके गुणों से युक्त हो जाता है, जब उसी तरह से अपने संपूर्ण जीवन को संसार का जीवन बना लेता है, जब अपनी संपूर्ण इच्छाओं को संसार की इच्छाओं में डालकर विकास के लिए प्रयास करता है, तमाम उपयोगी विविधताओं में गुणों को डालकर उनके विकास के लिए प्रयास करता है, तब उसको सही संत का दर्जा प्राप्त होता है।

तभी वह संसार में संत के रूप में सार्थक होता है। उसका संबंध केवल वस्त्र-आभूषण से नहीं है, किसी एक पंथ या संप्रदाय से नहीं है, बाहरी आडंबरों से नहीं है। वास्तव में आंतरिक उत्कर्ष ही संतत्त्व का लक्षण है। यह उत्कर्ष उसकी क्रियाओं में प्रकट होता है, यह संत की सबसे बड़ी पहचान है। संत का कर्म कभी स्वार्थ के अनुरूप नहीं होता, हमेशा परमार्थ के अनुरूप होता है।

आज लोगों को भी यह देखना होगा कि संत का केंद्रीकरण कहां है? कहां के लिए वह अपने जीवन को लगा रहा है, किस काम के लिए स्वयं को थका रहा है, किस उद्देश्य के लिए जीवन व्यतीत कर रहा है, उसके जीवन का परम लक्ष्य क्या है। निसंदेह, संत का उद्देश्य सम्पूर्ण संसार के लिए होना चाहिए। सभी लोगों को महा आनंद मिल जाए, सभी लोग सुखी हो जाएं, यदि कोई ऐसा चाहता है और इसके लिए प्रयास करता है तो वैदिक सनातन धर्म में उसे संत कहा गया है। केवल सनातन धर्म में ही नहीं, दूसरी परंपराओं में भी महान संत हुए हैं। मुस्लिमों में भी एक धारा सूफियों की रही, जिन्होंने अपना जीवन समाज के हित में बिताया।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है, मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**भारतीय संत**	1
2.	**कबीर**	4
	जीवन	4
	भाषा	5
	कृतियां	5
	धर्म के प्रति	6
	कबीर के राम	7
	कबीर साहित्य	9
	कबीर का प्रेम	23
	कबीर की साखी	26
3.	**सूरदास**	70
	जीवन परिचय	70
	सूरदास बनना	70
	सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में मतभेद	71
4.	**तुलसीदास**	85
	जन्म	85
	बचपन	86

भगवान श्री राम जी से भेंट 87
संस्कृत में पद्य-रचना 88
रामचरितमानस की रचना 89
कुछ ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण 93
तुलसीदास के जीवन की ऐतिहासिक घटनाएं 96
तुलसी का निवास-स्थान 100
विरोध और सम्मान 100
5. शंकरदेव 104
जीवनचरित 104
रचनाएँ 105
6. वल्लभाचार्य 108
दीक्षा 108
मत 109
सिद्धान्त 109
प्रमुख ग्रन्थ 110
षोडश ग्रन्थों की टीकाएँ तथा हिंदी अनुवाद 111
शिष्य परम्परा 112
7. स्वामी हरिदास 114
जीवन परिचय 114
वृन्दावन प्रस्थान 115
सखी-सम्प्रदाय 115
हरिदास सम्प्रदाय 116
अन्य तथ्य 117
ग्राउस के विचार 120
सम्बंधित प्रसंग 125
8. कालिदास 127
जीवन परिचय 127
सार्वभौमिक कवि 128
संसार के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार 128
कालिदास द्वारा शूरसेन जनपद का वर्णन 129
वृन्दावन और गोवर्धन का वर्णन 129

कालिदास का साहित्य	130
रघुवंश महाकाव्य	132
कथावस्तु	133
उन्नीसवां सर्ग	136
पर्वतराज हिमालय	139
पार्वती की तप साधना	140
विवाह सन्देश भेजने का आग्रह	141
कार्तिकेय का जन्म	141
कुमारसम्भव की विलक्षणता	142
टीकाकारों द्वारा मेघदूत का समीक्षण	143
मेघदूत के स्रोत	144
कथा की पृष्ठभूमि	146
रससृष्टि	148
छन्दोविधान तथा भाषाशैली	149
कालिदास की प्रथम रचना	150
ऋतुसंहार का काव्यसौन्दर्य	153
टीका	154
सर्वप्रथम संपादन	155
अभिज्ञान शाकुन्तलम्	155

1

भारतीय संत

भारतीय संत भारत के प्राचीनकाल से आज तक के सभी संतों का नाम आता है। एक संत एक मानव 'आत्म, सत्य, वास्तविकता' के अपने या अपने ज्ञान के लिए और एक 'सच-आदर्श' के रूप में प्रतिष्ठित किया जा रहा है। ये सिख धर्म में यह एक जा रहा है, जो एकेश्वरवादी भगवान के साथ संघ के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान और दिव्य ज्ञान/शक्ति प्राप्त कर ली है वर्णन करने के लिए प्रयोग किया जाता है। वही संत है। ईश्वर ने अपनी बातों को लोगों तक समझाने के लिए, उन्हें सही रास्ते पर लाने के लिए, व्यक्ति का विकास कैसे हो, उसके चिंतन, शरीर, धन, ज्ञान का विकास कैसे हो, उसके लिए एक प्रतिनिधि परंपरा का प्रारंभ किया, यही संत परंपरा है।

जो ईश्वर की भावनाएं होती हैं, जो ईश्वर की स्थापनाएं होती हैं, जो ईश्वर के सारे उद्देश्य होते हैं, ईश्वर जिन भावनाओं से जुड़ा होता है, जिन गुणों से जुड़ा होता है, जिने अच्छाइयों से जुड़ा होता है, वो सब संतों में होती हैं। संत के जीवन में समाज भी यही खोजता है कि संत में लोभ नहीं हो, कामना-हीनता हो।

समाज संत में यह देखता है कि उसमें श्रेष्ठता है या नहीं, संयम है या नहीं। संत में दूसरों की भलाई करने की भावना है या नहीं। लोग संत में सभी गुण खोजते हैं। संतों को परखा जाता है। लोग यह नहीं देखते कि संत को गाड़ी चलाना आता है या नहीं, कम्प्यूटर चलाना आता है या नहीं, संत को प्रबंधन चलाना आता है या नहीं। संत हैं तो संतत्त्व होना चाहिए।

जो गुण, जो भाव, जो उत्कर्ष, जो ग्रहणशीलता, जो विशिष्टता ईश्वर में पाई जाती है, उन सभी भावों को लोग लोकतंत्र में खोजते हैं और संतों में भी खोजते हैं। लोग जब किसी में इन गुणों को नहीं पाते हैं, तब उसे ढोंगी कहते हैं। ईश्वर ने अपने प्रतिनिधि के रूप में संतों को भेजा है। उसके सभी उद्देश्यों, सभी इच्छाओं, सभी लीलाओं, क्रियाओं, सभी व्यवस्थाओं को संत जन समाज कल्याण के लिए प्रयुक्त करते हैं।

संत स्वयं को केवल समाज के लिए नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए, केवल मानवता के लिए ही नहीं, अपितु संपूर्ण प्राणियों के लिए समर्पित कर सबके विकास को गति देते हैं। जैसे लोकतंत्र प्रतिनिधि तंत्र है, ठीक वैसे ही संतों का समाज भी ईश्वर का प्रतिनिधि तंत्र है। उसके सभी उद्देश्यों, इच्छाओं, लीलाओं व क्रियाओं को संत जन समाज कल्याण के लिए प्रयुक्त करते हैं।

संसार का जनक संसार में आकार, प्रकार, स्वभाव की अथाह विविधता है। जहां 84 लाख योनियों की चर्चा की जाती है। 84 लाख योनियों के संपूर्ण निर्माण का जो श्रेय है, सनातन धर्म के अनुसार, सृष्टि जहां भी हो, जैसी भी हो, इस संपूर्ण सृष्टि का निर्माता ईश्वर ही है।

इतनी बड़ी सृष्टि का संपादन कोई मनुष्य नहीं कर सकता। न समुद्र का, न हिमालय का, न आकाश का, न पृथ्वी का, न वायु का, न ग्रह-नक्षत्र का। इसलिए यह माना गया है और इसको बार-बार वेद, पुराण व स्मृतियों में दोहराया गया है कि संसार को ईश्वर ही बनाता है और पालन करता है, वही उसका पोषण करता है। उसको सुंदर बनाता है, उपयोगी बनाता है, सुदृढ़ बनाता है और जब कभी उसे लगता है तो उस चीज को अपने में समाहित कर लेता है, इसी को संहार कहते हैं।

ईश्वर अपनी तरह से सुधार करता है। जैसे राजशाही प्रथा की जो विकृतियां थीं, उनमें से बहुत सी विकृतियों से समाज को छुटकारा मिला। लोकतंत्र में बहुत सी अच्छाइयां हैं, जनता अपना प्रतिनिधि चुनती है। वैसे ही संसार को बनाकर ईश्वर ने वेदों, शास्त्रों के रूप में नियम-कानून भी बनाए कि जीवन में कैसे चलना है, कैसे रहना है, किस तरह से विकास होगा, किस तरह से व्यक्ति सही रहेगा। संपूर्ण नियम-कानून उसने बनाए और उसी आधार पर संसार को अच्छाई की ओर ले जाने का मार्गदर्शन किया।

संत का उद्देश्य क्या हो? संसार में साधु-संतों का बड़ा काम है। संतों ने मानव समाज को ईश्वरीय ज्ञान से जोड़ा, संस्कारों से जोड़ा, जीवन जीने की

कला से जोड़ा। विकास की तमाम क्रियाओं से जोड़ा और सबकुछ इतना अच्छा किया कि पूरा संसार उनकी ओर देखता है। ऐसे बड़े कामों के लिए, लोगों की अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए संत का बड़ा अच्छा और वैसा ही सही स्वरूप होना चाहिए, जैसे ईश्वर के किसी प्रतिनिधि का होना चाहिए।

आज हमें यह जानना होगा कि संत का सही स्वरूप क्या होता है। जब वह अपने ज्ञान द्वारा ईश्वर को समझ लेता है, अपनी भक्ति द्वारा ईश्वर को प्राप्त कर लेता है, अपनी शरणागति द्वारा ईश्वर को प्राप्त कर लेता है और उसके गुणों से युक्त हो जाता है, जब उसी तरह से अपने संपूर्ण जीवन को संसार का जीवन बना लेता है, जब अपनी संपूर्ण इच्छाओं को संसार की इच्छाओं में डालकर विकास के लिए प्रयास करता है, तमाम उपयोगी विविधताओं में गुणों को डालकर उनके विकास के लिए प्रयास करता है, तब उसको सही संत का दर्जा प्राप्त होता है।

तभी वह संसार में संत के रूप में सार्थक होता है। उसका संबंध केवल वस्त्र-आभूषण से नहीं है, किसी एक पंथ या संप्रदाय से नहीं है, बाहरी आडंबरों से नहीं है। वास्तव में आंतरिक उत्कर्ष ही संतत्त्व का लक्षण है। यह उत्कर्ष उसकी क्रियाओं में प्रकट होता है, यह संत की सबसे बड़ी पहचान है। संत का कर्म कभी स्वार्थ के अनुरूप नहीं होता, हमेशा परमार्थ के अनुरूप होता है।

आज लोगों को भी यह देखना होगा कि संत का केंद्रीकरण कहां है? कहां के लिए वह अपने जीवन को लगा रहा है, किस काम के लिए स्वयं को थका रहा है, किस उद्देश्य के लिए जीवन व्यतीत कर रहा है, उसके जीवन का परम लक्ष्य क्या है। निसंदेह, संत का उद्देश्य सम्पूर्ण संसार के लिए होना चाहिए। सभी लोगों को महा-आनंद मिल जाए, सभी लोग सुखी हो जाएं, यदि कोई ऐसा चाहता है और इसके लिए प्रयास करता है तो वैदिक सनातन धर्म में उसे संत कहा गया है। केवल सनातन धर्म में ही नहीं, दूसरी परंपराओं में भी महान संत हुए हैं। मुस्लिमों में भी एक धारा सूफियों की रही, जिन्होंने अपना जीवन समाज के हित में बिताया।

सूची में सभी प्राचीन ऋषियों, मुनियों, स्वामी महावीर, गौतम बुद्ध, मध्यकालीन सभी संत, सिख के सभी गुरुओं का समावेश है।

2

कबीर

कबीर या भगत कबीर 15वीं सदी के भारतीय रहस्यवादी कवि और संत थे। वे हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग में ज्ञानाश्रयी-निर्गुण शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक थे। इनकी रचनाओं ने हिन्दी प्रदेश के भक्ति आंदोलन को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। उनका लेखन सिखों के आदि ग्रंथ में भी देखने को मिलता है।

वे हिन्दू धर्म व इस्लाम को न मानते हुए धर्म निरपेक्ष थे। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों, कर्मकांड, अंधविश्वास की निंदा की और सामाजिक बुराइयों की कड़ी आलोचना की थी। उनके जीवनकाल के दौरान हिन्दू और मुसलमान दोनों ने उन्हें अपने विचार के लिए धमकी दी थी।

कबीर पंथ नामक धार्मिक सम्प्रदाय इनकी शिक्षाओं के अनुयायी हैं।

जीवन

कबीर के (लगभग 14वीं-15वीं शताब्दी) जन्म स्थान के बारे में विद्वानों में मतभेद है, परन्तु अधिकतर विद्वान इनका जन्म काशी में ही मानते हैं, जिसकी पुष्टि स्वयं कबीर का यह कथन भी करता है।

'काशी में परगट भये, रामानंद चेताये'

कबीर के गुरु के सम्बन्ध में प्रचलित कथन है कि कबीर को उपयुक्त गुरु की तलाश थी। वह वैष्णव संत आचार्य रामानंद को अपना अपना गुरु बनाना

चाहते थे लेकिन उन्होंने कबीर को शिष्य बनाने से मना कर दिया। कबीर ने अपने मन में ठान लिया कि स्वामी रामानंद को ही हर कीमत पर अपना गुरु बनाऊंगा, इसके लिए कबीर के मन में एक विचार आया कि स्वामी रामानंद जी सुबह चार बजे गंगा स्नान करने जाते हैं उसके पहले ही उनके जाने के मार्ग में सीढ़ियों पर लेट जाऊंगा और उन्होंने ऐसा ही किया। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगास्नान करने के लिये सीढ़ियां उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल 'राम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में-

काशी में परगट भये, रामानंद चेताये

जीविकोपार्जन के लिए कबीर जुलाहे का काम करते थे।

कबीर की दृढ़ मान्यता थी कि कर्मों के अनुसार ही गति मिलती है स्थान विशेष के कारण नहीं। अपनी इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए अंत समय में वह मगहर चले गए, क्योंकि लोगों की मान्यता थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग और मगहर में मरने पर नरक मिलता है। मगहर में उन्होंने अंतिम सांस ली। आज भी वहां पर मजार व समाधि स्थित है।

भाषा

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी एवं पंचमेल खिचड़ी है। इनकी भाषा में हिंदी भाषा की सभी बोलियों के शब्द सम्मिलित हैं। राजस्थानी, हरयाणवी, पंजाबी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा के शब्दों की बहुलता है।

कृतियां

धर्मदास ने उनकी वाणियों का संग्रह 'बीजक' नाम के ग्रंथ में किया जिसके तीन मुख्य भाग हैं–साखी, सबद (पद), रमैनी

साखी-संस्कृत साक्षी, शब्द का विकृत रूप है और धर्मोपदेश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अधिकांश साखियां दोहों में लिखी गयी हैं पर उसमें सोरठे का भी प्रयोग मिलता है। कबीर की शिक्षाओं और सिद्धांतों का निरूपण अधिकतर साखी में हुआ है।

सबद गेय पद है जिसमें पूरी तरह संगीतात्मकता विद्यमान है। इनमें उपदेशात्मकता के स्थान पर भावावेश की प्रधानता है, क्योंकि इनमें कबीर के प्रेम और अंतरंग साधना की अभिव्यक्ति हुई है।

रमैनी चौपाई छंद में लिखी गयी है इनमें कबीर के रहस्यवादी और दार्शनिक विचारों को प्रकट किया गया है।

धर्म के प्रति

साधु संतों का तो घर में जमावड़ा रहता ही था। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे- 'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ। उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुंह से भाखे और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। आप के समस्त विचारों में रामनाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्तिपूजा, रोजा, ईद, मस्जिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे।

वे कभी कहते हैं-

'हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया' तो कभी कहते हैं, 'हरि जननी मैं बालक तोरा'।

और कभी 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसै'

उस समय हिंदू जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुंच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के विरोधी थे। कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्रएं कीं इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुंचे। वहां रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहां के संत भगवान गोस्वामी के जिज्ञासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

'बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान। करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान।।'

वन से भाग कर बहेलिये के द्वारा खोये हुए गड्ढे में गिरा हुआ हाथी अपनी व्यथा किस से कहे ?

सारांश यह कि धर्म की जिज्ञासा सें प्रेरित हो कर भगवान गोसाई अपना घर छोड़ कर बाहर तो निकल आये और हरिव्यासी सम्प्रदाय के गड्ढे में गिर कर अकेले निर्वासित हो कर असंवाद्य स्थिति में पड़ चुके हैं।

मूर्तित पूजा को लक्ष्य करते हुए उन्होंने एक साखी हाजिर कर दी–

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौं पहार। वा ते तो चाकी भली, पीसी खाय संसार।।

कबीर के राम

कबीर के राम तो अगम हैं और संसार के कण-कण में विराजते हैं। कबीर के राम इस्लाम के एकेश्वरवादी, एकसत्तावादी खुदा भी नहीं हैं। इस्लाम में खुदा या अल्लाह को समस्त जगत एवं जीवों से भिन्न एवं परम समर्थ माना जाता है। पर कबीर के राम परम समर्थ भले हों, लेकिन समस्त जीवों और जगत से भिन्न तो कदापि नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत वे तो सबमें व्याप्त रहने वाले रमता राम हैं। वह कहते हैं

व्यापक ब्रह्म सबनिमैं एकै, को पंडित को जोगी। रावण-राव कवनसूं कवन वेद को रोगी।

कबीर राम की किसी खास रूपाकृति की कल्पना नहीं करते, क्योंकि रूपाकृति की कल्पना करते ही राम किसी खास ढांचे (फ्रेम) में बंध जाते, जो कबीर को किसी भी हालत में मंजूर नहीं। कबीर राम की अवधारणा को एक भिन्न और व्यापक स्वरूप देना चाहते थे। इसके कुछ विशेष कारण थे, जिनकी चर्चा हम इस लेख में आगे करेंगे। किन्तु इसके बावजूद कबीर राम के साथ एक व्यक्तिगत पारिवारिक किस्म का संबंध जरूर स्थापित करते हैं। राम के साथ उनका प्रेम उनकी अलौकिक और महिमाशाली सत्ता को एक क्षण भी भुलाए बगैर सहज प्रेमपरक मानवीय संबंधों के धरातल पर प्रतिष्ठित है।

कबीर नाम में विश्वास रखते हैं, रूप में नहीं। हालांकि भक्ति-संवेदना के सिद्धांतों में यह बात सामान्य रूप से प्रतिष्ठित है कि 'नाम रूप से बढ़कर है', लेकिन कबीर ने इस सामान्य सिद्धांत का क्रांतिधर्मी उपयोग किया। कबीर ने

राम-नाम के साथ लोकमानस में शताब्दियों से रचे-बसे संश्लिष्ट भावों को उदात्त एवं व्यापक स्वरूप देकर उसे पुराण-प्रतिपादित ब्राह्मणवादी विचारधारा के खांचे में बांधे जाने से रोकने का प्रयास किया।

कबीर के राम निर्गुण-सगुण के भेद से परे हैं। वास्तव में उन्होंने अपने राम को शास्त्र-प्रतिपादित अवतारी, सगुण, वर्चस्वशील वर्णाश्रम व्यवस्था के संरक्षक राम से अलग करने के लिए ही 'निर्गुण राम' शब्द का प्रयोग किया–'निर्गुण राम जपहु रे भाई।' इस 'निर्गुण' शब्द को लेकर भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। कबीर का आशय इस शब्द से सिर्फ इतना है कि ईश्वर को किसी नाम, रूप, गुण, काल आदि की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। जो सारी सीमाओं से परे हैं और फिर भी सर्वत्र हैं, वही कबीर के निर्गुण राम हैं। इसे उन्होंने 'रमता राम' नाम दिया है। अपने राम को निर्गुण विशेषण देने के बावजूद कबीर उनके साथ मानवीय प्रेम संबंधों की तरह के रिश्ते की बात करते हैं। कभी वह राम को माधुर्य भाव से अपना प्रेमी या पति मान लेते हैं तो कभी दास्य भाव से स्वामी। कभी-कभी वह राम को वात्सल्य मूर्ति के रूप में मां मान लेते हैं और खुद को उनका पुत्र। निर्गुण-निराकार ब्रह्म के साथ भी इस तरह का सरस, सहज, मानवीय प्रेम कबीर की भक्ति की विलक्षणता है। यह दुविधा और समस्या दूसरों को भले हो सकती है कि जिस राम के साथ कबीर इतने अनन्य, मानवीय संबंधपरक प्रेम करते हों, वह भला निर्गुण कैसे हो सकते हैं, पर खुद कबीर के लिए यह समस्या नहीं है।

वह कहते भी हैं

"संतौ, धोखा कासूं कहिये। गुनमैं निरगुन, निरगुनमैं गुन, बाट छांड़ि क्यूं बहिसे!" नहीं है।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने कबीर के राम एवं कबीर की साधना के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है– 'कबीर का सारा जीवन सत्य की खोज तथा असत्य के खंडन में व्यतीत हुआ। कबीर की साधना ''मानने से नहीं, ''जानने से आरम्भ होती है। वे किसी के शिष्य नहीं, रामानन्द द्वारा चेताये हुए चेला हैं। उनके लिए राम रूप नहीं है, दशरथी राम नहीं है, उनके राम तो नाम साधना के प्रतीक हैं। उनके राम किसी सम्प्रदाय, जाति या देश की सीमाओं में कैद नहीं है। प्रकृति के कण-कण में, अंग-अंग में रमण करने पर भी जिसे अनंग स्पर्श नहीं कर सकता, वे अलख, अविनाशी, परम तत्त्व ही राम हैं। उनके राम मनुष्य और मनुष्य के बीच किसी भेद-भाव के कारक

नहीं हैं। वे तो प्रेम तत्त्व के प्रतीक हैं। भाव से ऊपर उठकर महाभाव या प्रेम के आराध्य हैं :-

'प्रेम जगावै विरह को, विरह जगावै पीउ, पीउ जगावै जीव को, जोइ पीउ सोई जीउ' - जो पीउ है, वही जीव है। इसी कारण उनकी पूरी साधना ''हंस उबारन आए की साधना है। इस हंस का उबारना पोथियों के पढ़ने से नहीं हो सकता, ढाई आखर प्रेम के आचरण से ही हो सकता है। धर्म ओढ़ने की चीज नहीं है, जीवन में आचरण करने की सतत सत्य साधना है। उनकी साधना प्रेम से आरम्भ होती है। इतना गहरा प्रेम करो कि वही तुम्हारे लिए परमात्मा हो जाए। उसको पाने की इतनी उत्कण्ष्ठा हो जाए कि सबसे वैराग्य हो जाए, विरह भाव हो जाए तभी उस ध्यान समाधि में पीउ जाग्रत हो सकता है। वही पीउ तुम्हारे अन्तर्सन में बैठे जीव को जगा सकता है। जोई पीउ है सोई जीउ है। तब तुम पूरे संसार से प्रेम करोगे, तब संसार का प्रत्येक जीव तुम्हारे प्रेम का पात्र बन जाएगा। सारा अहंकार, सारा द्वेष दूर हो जाएगा। फिर महाभाव जगेगा। इसी महाभाव से पूरा संसार पिउ का घर हो जाता है।

सूरज चन्द्र का एक ही उजियारा, सब यहि पसरा ब्रह्म पसारा।
जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी
फूटा कुम्भ जल जलहीं समाना, यह तथ कथौ गियानी।'

कबीर साहित्य

कबीर साहित्य में जहाँ दर्शन, अध्यात्म, ज्ञान, वैराग्य की गूढ़ता मिलती है, वहीं उनके साहित्य में समाज सुधार का शंखनाद भी है। वह दार्शनिक होने के साथ-साथ, समाज सुधारक भी थे। समाज सुधार अर्थात् जन जीवन का उत्थान कबीर के जीवन की साधना थी। सुधार का समन्वित स्वरूप कि उन्होंने भक्ति के आडम्बरों पर चोट की, वहीं अंधविश्वासों, रूढ़, प्रथा, परम्पराओं, अंधविश्वासों पर भी निर्भीकता से लिखा। भक्ति में सुधार, समाज की कुप्रथाओं में सुधार, जीवन के हर क्षेत्र में सुधार, कबीर के जीवन की साधना रही है। कबीर कवि होने के साथ ही साधक थे, दर्शनिक थे, तत्त्वान्वेषी थे, भक्त और ज्ञानी थे। वस्तुतः कबीर का जीवन उच्चतम मानवीय व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति है।

प्रचलित धारणाओं के अनुसार, मस्तमौला संत कबीर रामानन्द जी के शिष्य थे। कबीर की जन्म तिथि में विभिन्न मतमतांतर हैं, पर विक्रमी सम्वत्

के अनुसार पन्द्रवीं शताब्दी का उत्तरार्द्धध, सोलहवीं का प्रारम्भ व 1455-56 के आसपास ही इनका जन्मकाल रहा। जन्मस्थान कोई काशी, कोई मगहर तथा कोई बलहरा गाँव आजमगढ के पास मानता है।

कबीर जब हुए देश में उथल-पुथल का समय था। मुसलमानों का आगमन, उनका आक्रमण, राज्य स्थापन और यहीं बस जाना, देश के इतिहास की बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना थी। मुसलमानों का आक्रमण राजनीतिक वर्चस्व कायम करना ही नहीं बल्कि इस्लाम का प्रचार अधिक था। अलग सांस्कृतिक एवं सामाजिक इकाई के रूप में कट्टर विरोधी होकर रहना, हिन्दू समाज को अपने में आत्मसात् करने की भावना से सारा हिन्दू समाज आतंकित एवं भयभीत था। मूर्तियाँ व मंदिर खण्डित होते रहे। इस विषमतापूर्ण समय में हिन्दुओं के समक्ष, अपनी सांस्कृतिक आत्मरक्षा का प्रश्न था। ऐसे में पुनरुत्थान कार्य, साम्प्रदायिक एवं जातीय भावनाओं को सामने रखकर किया जाना सम्भव नहीं था। हिन्दुओं में भी विभिन्न मतमतांतर, पंथ, सम्प्रदाय बन चुके थे, जो हिन्दू समाज में अन्तर्विरोध दर्शाते थे। मानना होगा, ऐसी विपरीत स्थितियों के समय में जब हिन्दू संस्कृति, धर्म, जाति को झकझोर दिया गया था—कबीर की समन्वय साधना ने, समाज में पुनरुत्थान का कार्य किया। पुनरुत्थान भक्ति साधना से ही सम्भव था। कबीर का साहित्य इस बात का साक्षी है।

कबीर के पहले तथा समसामयिक युग में भक्ति साधनाओं में सबसे प्रमुख भक्ति साधना ही है। भक्ति आन्दोलन ने भगवान की दृष्टि में सभी के समान होने के सिद्धान्त को फिर दोहराया। कबीर की भक्ति भावना तथ्य से जुडी है। भक्तिपथ में भक्ति के द्वारा प्राण स्पंदन देने वालों में कबीर भी प्रमुख हैं। अनेकानेक साधनाओं के अन्तर्विरोध के युग में कबीर जन्मे थे। कबीर के व्यक्तित्त्व को सभी अन्तर्विरोधों ने प्रभावित किया, इस पर कबीर ने समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। कबीर में परिस्थितिजन्य निर्णय की अभूतपूर्व क्षमता थी। वह आत्मचिंतन से प्राप्त निष्कर्षों को कसौटी पर कसने में कुशल थे। कबीर ने मानवतावादी तत्त्वग्राही व्यक्तित्त्व से अपने दृष्टिकोण में मजहबी, वर्गगत अहंकार तथा आचार संहिता की जडकारा में उलझा देने वाले तत्त्वों को भुला त्याग दिया। कबीर नैतिकता से विकसित भगवत्प्रेम में मानव कल्याण समझते हैं। कबीर की दृष्टि में यही मानवता का मूल आधार है। कबीर जीवन का चरम लक्ष्य परम तत्त्व की प्राप्ति मानते हैं। इस तत्त्व को प्राप्त करने का प्रमुख साधन ज्ञान और प्रेम है। कबीर के अनुसार ज्ञान से मतलब शास्त्र ज्ञान के अहंकार से मुक्त व्यक्ति

को सहज रूप से ज्ञान होता है। ऐसे ही प्रेम का सहज रूप ही कबीर को मान्य है। कबीर ने आध्यात्मिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साधना के स्तर पर समन्वय का संदेश दिया है। कबीर संत हैं-भक्त हैं। कबीर ने अपने साहित्य में, भक्ति, प्रेम व सदाचरण से भगवान को प्राप्त करने का संदेश दिया। वस्तुतः कबीर की व्यथा किसी वर्ग विशेष की व्यथा नहीं थी, वह व्यापक मानवता की व्यथा थी। वर्तमान संदर्भों में उन्होंने आज की तरह प्रतिष्ठा दिलाने के लिए साधना नहीं की। क्योंकि कबीर के अनुसार साधना से ही मूलतः मानव व प्राणी मात्र का आध्यात्मिक कल्याण है।

कबीर के अनुसार पिंड और ब्रह्माण्ड से भी परे, निर्विशेष तत्त्व है, वही सबसे परे परम तत्त्व है, जिसका अनुभव होने पर भी वाणी में अवर्णनीय है। वह अलख है, उसे कहा नहीं जा सकता। पिंड और ब्रह्माण्ड से परे का जो तत्त्व है वही हरि है। उसका कोई रूप नहीं, वह घट -घट में समाया है। कबीर ने इस तत्त्व को कई नामों से व्यक्त किया है। अलख, निरंजन, निरर्भ, निजपद, अभैपद, सहज, उनमन तथा और भी। "गुन में निरगुन, निरगुन में गुन हैं बाट छाड क्यों जहिए। अजर अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई।।" इसी चिंतन में कबीर कहते हैं-"जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है-बाहर भीतर पानी। फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।।" तथा-"पानी ही से हिम भया हिम है गया बिलाई।।''

प्रेम साध्य भी है-साधन भी। प्रेम स्वयं ही प्रेम का वरण करता है। अर्थात् केवल प्रेम के अनुग्रह से प्रेम प्राप्त होता है। प्रेम लौकिक, अलौकिक दोनों स्तर पर एक-सा रहता है। प्रेम वस्तुतः आत्मरति रूप है, अहेतुक होता है। आत्मबोध की सहज स्थिति आत्मरति है। कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम को लौकिक माध्यम से व्यक्त किया-"कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं। सीस उतारे हाथि करि, सो पैसे घर मांहि।।'' कबीर का सौन्दर्य ब्रह्म सविशेष ब्रह्म है, इससे उनके अन्तःकरण में भगवान का प्रेम जागा तो कबीर ने कहा, "संतो भाई आई ज्ञान की आंधी रे। भ्रम की टाटी सबै उडानी, माया रहे न बाँधी रे।।" कबीर के अनुसार लौकिक और आध्यात्मिक का भेद प्रेम की दिव्यता में बाधक नहीं है।

रहस्यवाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं, अनुराग उदय, परिचय, मिलन। कबीर साहित्य में भावनात्मक तथा साधनात्मक दोनों तरह का रहस्यवाद मिलता है। कबीर में भावनात्मक रहस्यवाद की प्रथम अवस्था से ही साधनात्मक रहस्यवाद के भी दर्शन होते हैं। "पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिये

कूँ सोभा नहीं–देख्या ही परमान।।" वह और भी आगे लिखते हैं–"सुरति समांणी निरति में, निरति रही निरधार। सुरति निरति परचा भया तब खुले स्वयं दुवार।।" और भी "जो काटो तौ डहडही, सींचौ तौ कुमिलाइ।।"

कबीर साहित्य में साखी कबीर का जीवनदर्शन है। साखी कबीर साहित्य का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंश है। साखियों में कबीर का व्यक्तित्त्व समग्र रूप से व्यक्त हुआ है। "साखी आँखी ज्ञान की समुझि लेहु मनमाहिं। बिनु साखी संसार का झगड़ा छूटै नाहिं।।" कबीर साहित्य में गुरु का स्थान सर्वोपरि ईश्वर समकक्ष है। कबीर के अनुसार गुरु शिष्य को मनुष्य से देवता कर देता है। "गुरु गोविन्द दोउ खड़े-काके लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो मिलाय।" सद्गुरु के बारे में कबीर लिखते हैं "ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जन बीसरि जाइ। जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरू मिलिया आई।।" इसके विपरीत अज्ञानी गुरु के बारे में कबीर कहते हैं–"जाका गुरु भी अंधला, चेला खरा निरंध। अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूं कूप पडंत।।" आज के संदर्भों में दार्शनिक कबीर की व्यक्त हुई कुछ-कुछ सटीक-सी लगती भावना "नां गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव। दुन्यूं बूडे धार में–चढ़ पाथर की नाव।"

जैसे ही सुमिरण को अंग, यानी मनन की अवस्था, विनती को अंग अर्थात् भगवान के समक्ष अपनी लघुता की अनुभूति तथा पति परमेश्वर के भाव की अभिव्यक्ति है। कबीर ने इस तरह 'अंग' के माध्यम में पचासों अंगों के तहत ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर पर वैदिक विचारधारा, वैष्णव विचारधारा का प्रभाव था, उन्होंने अपने साहित्य में एकात्मक अद्वैतवाद, ज्ञान तत्त्व, गुरु भक्ति, भगवद्भक्ति, अध्यात्म योग, प्रणवोपासना, जन्मान्तरवाद, भगवान के विविध वैष्णवी नाम, ब्रह्म स्वरूपों में श्रद्धा, भक्ति उपासना तथा प्रपत्ति, योग के भेद, माया तत्त्व आदि के माध्यम से काव्य रचना को संजोया। निर्भीक सुधारवादी संत कबीर ने, भक्ति ही क्या हर क्षेत्र में अंधविश्वासों पर चोट कर, रूढ़ परम्पराओं आडम्बरों से अलग हट, सामाजिक सुधार भरपूर किया। हिन्दू- मुसलमान दोनों के ही साम्प्रदायिक, रूढ़ग्रस्त विचारों की उन्होंने आलोचना की। अपनी सहज अभिव्यक्ति में कबीर ने लिखा–"कंकर पत्थर जोड़ के मस्जिद दी बनाय। ता पर मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।" इतना ही नहीं इससे भी बढकर लिखा "दिन में रोजा रखत हो, रात हनत हो गाय। यह तो खून औ बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।" ऐसे ही हिन्दुओं के अंधविश्वासों पर उन्होंने चोट की। धर्म के क्षेत्र में आडम्बरों का कबीर ने खुला विरोध किया। "पाहन पूजे हरि मिले–तो मैं पूजूं

पहार। ताते तो चाकी भली, पीस खाय संसार।।" कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी था उन्होंने बताया "मूंड मुंडाए हरि मिले, सबही लेऊँ मुंडाए। बार-बार के मूंड ते भेड न बैकुंठ जाए।।" कबीर ने हिन्दुओं के जप-तप, तिलक, छापा, व्रत, भगवा वस्त्र, आदि की व्यर्थता बताते हुए लिखा-"क्या जप क्या तप संयमी, क्या व्रत क्या अस्नान। जब लगि मुक्ति न जानिए, भाव भक्ति भगवान।।" मरणोपरांत गंगा में अस्थि विसर्जन पर कबीर ने लिखा-"जारि वारि कहि आवे देहा, मूआ पीछे प्रीति सनेहा। जीवित पित्रहि मारे डंडा, मूआ पित्र ले घालै गंगा।।" समाज में कई अस्वस्थ लोकाचारों पर कबीर ने प्रहार किए। वे कहते हैं-यदि मन में छल कपट की गर्द भरी है तो योग भी व्यर्थ है। "हिरदे कपट हरिसँ नहिं सांचो, कहा भयो जो अनहद नाच्यौ।।''

कबीर ने ब्रह्म को करुणामय माना है। ब्रह्म माया, और जीव के सम्बन्ध में कबीर के दार्शनिक विचारों का वर्णन है। कबीर निर्गुणोपासक थे। उन्होंने राम के गुणातीत, अगम्य, अगोचर, निरंजन ब्रह्म का वर्णन किया है। मानना होगा भक्ति आन्दोलन के सुधारवादी भक्त कवियों में कबीर का अपना अलग ही स्थान व नाम है। भगवा वस्त्र पहन कर जंगलों की खाक छानने के पक्ष में कबीर नहीं थे। उन्होंने धर्म एवं भक्ति में दिखावे को त्याग, तीर्थाटन, मूर्तिपूजा आदि को धर्म परिधि से बाहर रखा। कबीर कहते हैं, "काम-क्रोध, तृष्णा तजै, ताहि मिले भगवान।।" राम अर्थात् उनके ब्रह्म में अपने खुद के समर्पण की चरमसीमा देखने योग्य है। "लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल। लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।'' कबीर के बारे में किसी ने यह सही लिखा प्रतीत होता है, "ज्ञान में कबीर परम हंस, कल्पना में योगी, और अनुभूति में प्रिय के प्रेम की भिखारिणी पतिव्रता नारी हो।'' कबीर में अतिवाद कहीं भी नहीं। ब्रह्म परमसत्ता को कबीर ने सहजता से सर्वव्यापी बताते हुए कहा-"ना मैं गिरजा ना मैं मंदिर, ना काबे कैलास में। मौको कहाँ ढूंढे बंदे, मैं तो तेरे पास में।।''

कबीर का दृष्टिकोण सुधारवादी ही रहा। कबीर ने किसी धर्म विशेष एवं दर्शन की पताका ऊँची नहीं की। वस्तुतः उन्होंने तो अपने को मानवीय तत्त्वों से सम्बद्ध रखा। धर्म व सुधार के नाम पर कबीर ने जनता को उलझाया नहीं, उन्होंने तो खण्डन कर उलझनों से दूर रखा। जनमानस को अभेद की ओर प्रेरित कर भ्रम-माया से दूर रहने की प्रेरणा दी, इसीलिए कबीर मानवतावादी सुधारक माने जाते हैं। कबीर ने ईश्वर प्रेम, भक्ति व साधना में माया को बाधक माना। कबीर ने कहा माया आकर्षक व मनमोहक है। माया आचरण के कारण ही आत्मा अपने

परमात्म रूप को नहीं पहचान पाती। माया ब्रह्म से मिलने नहीं देती। "कबीर माया पापणी, हरि सूं करे हराम। मुख कडया को कुमति, कहने न देई राम।।

पंद्रहवीं शताब्दी में संतकाल के प्रारंभ में सारा भारतीय वातावरण क्षुब्ध था। बहुत से पंडित जन इस क्षोभ का कारण खोजो में व्यस्त थे और अपने-अपने ढंग पर समाज और धर्म को संभालने का प्रयत्न कर रहे थे। इस अराजकता का कारण इस्लाम जैसे एक सुसंगठित संप्रदाय का आगमन था। इसके बाद देश के उथल-पुथल वातावरण में महात्मा कबीर ने काफी संघर्ष किया और अपने कड़े विरोधों तथा उपदेशों से समाज को बदलने का पूरा प्रयास किया। सांप्रदयिक भेद-भाव को समाप्त करने और जनता के बीच खुशहाली लाने के लिए निमित्त संत-कबीर अपने समय के एक मजबूत स्तंभ साबित हुए। वे मूलत: आध्यात्मिक थे। इस कारण संसार और सांसारिकता के संबंध में उन्होंने अपने काल में जो कुछ कहा, उसमें भी आध्यात्मिक स्वर विशेष रूप से मुखर है।

इनके काजी मुल्ला पीर पैगम्बर रोजा पछिम निवाज।
इनके पूरब दिसा देव दिज पूजा ग्यारिसि गंगदिवाजा।
कहे कबीर दास फकीरा अपनी राह चलि भाई।
हिंदू तुरुक का करता एकै ता गति लखी न जाई।

कबीर-व्यवहार में भेद-भाव और भिन्नता रहने के कारण सांप्रदायिक कटुता बराबर बनी रही। कबीर दास इसी कटुता को मिटाकर, भाई चारे की भावना का प्रसार करना चाहते थे। उन्होंने जोरदार शब्दों में यह घोषणा की कि राम और रहीम में जरा भी अंतर नहीं है –

कबीर ने अल्लाह और राम दोनों को एक मानकर उनकी वंदना की है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने अध्यात्म के इस चरम शिखर की अनुभूति कर ली थी, जहाँ सभी भिन्नता, विरोध-अवरोध तथा समग्र द्वैत-अद्वैत में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। प्रमुख बात यह है कि वे हिंदू-मुसलमान के जातीय और धार्मिक मतों के वैमनस्य को मिटाकर उन्हें उस मानवीय अद्वैत धरातल पर प्रतिष्ठित करने में मानवता और आध्यात्म के एक महान नेता के समान प्रयत्नशील हैं। उनका विश्वास था कि "सत्य के प्रचार से ही वैमनस्य की भावना मिटाई जा सकती है। इस समस्या के समाधान हेतु, कबीर ने जो रास्ता अपनाया था, वह वास्तव में लोक मंगलकारी और समयानुकूल था। अल्लाह और राम की इसी अद्वैत अभेद और अभिन्न भूमिका की अनुमति के माध्यम से

उन्होंने हिंदू-मुसलमान दोनों को गलत कार्य पर चलने के लिए वर्जित किया और लगातार फटकार लगाई।

ना जाने तेरा साहब कैसा है,
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहिरा है,
पंडित होय के आसन मारे लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।

हिंदू- मुसलमान दोनों का विश्वास भगवान में है। कबीर ने इसी विश्वास के बल पर दोनों जातियों को एक करने का प्रयत्न किया। भाईचारे की भावना उत्पन्न करने की चेष्टा की।

सबद सरुपी जिव-पिव बुझों,
छोड़ो भय की ढेक।
कहे कबीर और नहिं दूज।
जुग- जुग हम तुम एक।

कबीर शब्द-साधना पर जोर दे रहे हैं। इनका कथन है, तुम श्रम तज कर शब्द साधना करो और अमृत रस का पान करो, हम तुम कोई भेद नहीं हैं, हम दोनों इसी एक पिता की संतान हैं। इसी अर्थ में कबीर दास हिंदू और मुसलमान के स्वयं विधायक हैं।

बड़े कठोर तप, त्याग, बलिदान और संकल्प शक्ति को अपना कवच बनाकर भारत की जनता ने अपनी खोई हुई स्वतंत्रता को प्राप्त कर ली, लेकिन इसके साथ ही सांप्रदायिकता की लहर ने इस आनंद बेला में विष घोल दिया। भारत का विभाजन हुआ। इस विभाजन के बाद असंख्य जानें गई, लाखों घर तबाह हुए और बूढ़े, बच्चे, जवान, हिंदू, मुस्लिम सब समाज विरोधी तत्त्वों के शिकार हुए। इन तमाम स्थितियों से निबटने के लिए मानवतावादी सुधार की आवश्यकता थी, यह काम अध्यात्म से ही संभव था। कबीर ने अपने समय और अब हमलोग भी एक दिन चले जाएँगे। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन अल्प है। इस अवधि का सदुपयोग इस स्मरण में करना चाहिए। सांसारिक हर्ष-विषाद को विशेष महत्व नहीं देना चाहिए।

पंडितों का ढोंगपूर्ण रवैया देखकर उन्हें चेतावनी देते हुए कहते हैं –

पंडित होय के आसन मारे, लंबी माला जपता है,
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो सो भी साहब लगता है,

ऊँचा निचा महल बनाया, गहरी नेव जमाता है,
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि जैसे को तैसा है।

कबीर शोषणकर्ता को रोषपूर्ण आगाह करते है कि भगवान के दरबार में न्याय होने पर उन्हें अपने किए का फल अवश्य भुगतना पड़ेगा। दूसरी ओर निरीह जनता को वे समझाते हुए कहते हैं –

कबीर नौवति आपणी, दिन दस लेहु बजाई,
ऐ पुर पारन, एक गली, बहुरि न देखें आई।

महात्मा कबीर कहते हैं कि यह जीवन कुछ ही दिनों के लिए मिला है, अतः इसका उपयोग सार्थक ढंग से खूब आनंदपूर्वक करना चाहिए।

जो करेंगे सो भरेंगे, तू क्यों भयो उदास,
कछु लेना न देना, मगन रहना,
कहे कबीर सुनो भाई साधो,
गुरु चरण में लपटे रहना।

"महात्मा कबीर साहब संतप्त जनता को समझाते हुए कहते हैं कि कर्तव्य निर्विकार रूप से करो, व्यर्थ के प्रपंच में मत पड़ो, सर्वदा अपने मन को गुरु में लगाए रहो।"

जीवित ही कछु कीजै,
हरि राम रसाइन पीजै।

महात्मा कबीर दास ने पीड़ित जनता के दुख-दर्द को दूर करने के लिए "राम रसायन" का आविष्कार किया। कबीर साहब ने पहली बार जनता को उसकी विपलता में ही खुश रहने का संदेश दिया।

कबीर मध्यकाल के क्रांतिपुरुष थे। उन्होंने देश की अंदर और बाहर की परिस्थितियों पर एक ही साथ धावा बोलकर, समाज और भावलोक को जो प्रेरणा दी, उसे न तो इतिहास भुला सकता है और न ही साहित्य इतनी बलिष्ठ रूढ़ियों पर जिस साहस और शक्ति से प्रहार किया, यह देखते ही बनता है।

संतों पांडे निपुण कसाई,
बकरा मारि भैंसा पर धावै, दिल में दर्द न आई,
आतमराम पलक में दिन से, रुधिर की नदी बहाई।

कबीर ने समाज की दुर्बलता और अद्योगति को बड़ी करुणा से देखकर, उसे ऊपर उठाने के मौलिक प्रयत्न किया। उन्होंने भय, भर्त्सना और भक्ति जैसे अस्त्रों का उपयोग राजनैतिक विभिषिकाओं और सामाजिक विषमताओं जैसे शत्रु

को परास्त करने के लिए किया। कबीर साहब यह बात समझ चुके थे कि इन शत्रुओं के विनाश होने पर ही जनता का त्रण मिल सकता है। अतः उनका सारा विरोध असत्य, हिंसा और दुराग्रह से था। उनका उद्देश्य जीवन के प्रति आशा पैदा करना था।

कबीर का तू चित वे, तेरा च्यता होई,
अण च्यता हरि जो करै, जो तोहि च्यंत नहो।

महात्मा कबीर शोकग्रस्त जनता को सांत्वना देते हैं "तुम चिंता क्यों करते हो ? सारी चिंता छोड़कर प्रभु स्मरण करो।"

केवल सत्य विचारा, जिनका सदा अहार,
कहे कबीर सुनो भई साधो, तरे सहित परिवार।

कब उनके अनुसार जो सत्यवादी होता है, उसका तो भला होता ही है, साथ-साथ उसके सारे परिवार का भी भला होता है और वे लोग सुख पाते हैं। वह कहते हैं, सारे अनर्थों की जड़, असत्य और अन्याय है, इनका निर्मूल होने पर ही शुभ की कल्पना की जा सकती है। इसी अध्यात्म का सहारा लेकर हिंदू-मुस्लिम के भेद-भाव को मिटाने का प्रयत्न किया था, इसके साथ-साथ ही उन्होंने अपने नीतिपरक पदों के द्वारा जनता का मनोबल बढ़ाने का प्रयत्न किया था। आज के परिवेश में भी इन्हीं उपायों की आवश्यकता है।

सांप्रदायिक मतभेदों या दंगों का कारण अज्ञान या नासमझी है। इस नासमझी या अज्ञान को दूर करने के लिए कबीर दास द्वारा बताए गए उपायों का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। कबीर की वाणी ही समस्त समस्याओं का निवारण करने में समर्थ है।

ऊँच-नीच, जाति-पाति का भेद मिटाकर सबको एक समान सामाजिक स्तर देने का कार्य किया। आज के संदर्भ में भी इसी चीज की जरूरत है।

गुप्त प्रगट है एकै दुधा, काको कहिए वामन- शुद्रा
झूठो गर्व भूलो मति कोई, हिंदू तुरुक झूठ कुल दोई॥

वर्तमान समस्याएँ चाहे सांप्रदायिक हों चाहे वैयक्तिक, सबका समुचित समाधान नैतिक मूल्य प्रस्तुत करते हैं।

कबीर दर्शन में जाति-धर्म का कोई बंधन स्वीकार नहीं है। सारे अलगाववादी विधानों को तोड़कर वह एक शुद्र मानव जाति का निर्माण करता है, इसलिए आज के संदर्भ में इसकी उपयोगिता बढ़ गई है।

जिन दिनों कबीर दास का आविर्भाव हुआ था, उन दिनों हिंदूओं में पौराणिक मत ही प्रबल था। देश में नाना प्रकार की साधनाएँ प्रचलित थीं। कोई वेद का दिवाना था, तो कोई उदासी और कई तो ऐसे थे, जो दीन बनाए फिर रहा था, तो कोई दान- पुण्य में लीन था। कई व्यक्ति ऐसे थे, जो मदिरा के सेवन ही में सब कुछ पाना चाहता था तथा कुछ लोग तंत्र-मंत्र, औषधादि की करामात को अपनाए हुआ था।

इक पठहि पाठ, इक भी उदास,
इक नगन निरन्तर रहै निवास,
इक जीग जुगुति तन खनि,
इक राम नाम संग रहे लीना।

कबीर ने अपने चतुर्दिक जो कुछ भी देखा-सुना और समझा, उसका प्रचार अपनी वाणी द्वारा जोरदार शब्दों में किया –

ऐसा जो जोग न देखा भाई, भुला फिरे लिए गफिलाई
महादेव को पंथ चलावे, ऐसा बड़ो महंत कहावै॥

कबीर दास ने जब अपने तत्कालीन समाज में प्रचलित विडम्बना देखकर चकित रह गए। समाज की इस दुहरी नीति पर उन्होंने फरमाया –

पंडित देखहु मन मुंह जानी।
कछु धै छूति कहां ते उपजी, तबहि छूति तुम मानी।

समाज में छुआछूत का प्रचार जोरों पर देखकर कबीर साहब ने उसका खंडन किया। उन्होंने पाखंडी पंडित को संबोधित करके कहा कि छुआछूत की बीमारी कहाँ से उपजी।

तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद,
हम कत लौहू तुम कत दूध,
जो तुम बाभन बाभनि जाया,
आन घाट काहे नहि आया।

महात्मा कबीर साहब ब्राह्मण का अभिमान यह कहकर तोड़ते हैं कि अगर तुम उच्च जाति के खुद को मानते हो, तो तुम किसी दूसरे मार्ग से क्यों नहीं आए ? इस प्रकार कबीर ने समाज व्यवस्था पर नुकीले एवं मर्मभेदी अंदाज से प्रहार किया। समाज में व्याप्त आडंबर, कुरीति, व्याभिचार, झूठ और पाखंड देखकर वे उत्तेजित हो जाते और चाहते कि जन-साधारण को इस प्रकार के आडम्बर एवं विभेदों से मुक्ति मिले और उनके जीवन में सुख-आनंद का संचार हो।

महात्मा कबीर के पास अध्यात्मिक ज्ञान था और इसी ज्ञान के द्वारा वे लोगों को आगाह करते थे–

आया है सो जाएगा, राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चलें, एक बंधे जंजीर।

अपने कर्तव्य के अनुसार हर व्यक्ति को फल मिलना निश्चित है। हर प्राणी को यहाँ से जाना है। समाज व्याप्त कुरीतियों करने और जन-समुदाय में सुख-शान्ति लाने के लिए कबीर एक ही वस्तु को अचूक औषधि मानते हैं, वह है आध्यात्म। वे चाहते हैं कि मानव इसका सेवन नियमित रूप से करे।

महात्मा कबीर दास के सुधार का प्रभाव जनता पर बड़ी तेजी से पड़ रहा था और वह वर्ण-व्यवस्था के तंत्र को तोड़ रहे थे, उतने ही तेजी से व्यवस्था के पक्षधरों ने उनका विरोध भी किया। संत के आस-पास, तरह-तरह के विरोधों और चुनौतियों की एक दुनिया खड़ी कर दी। उन्होंने सभी चुनौतियों का बड़ी ताकत के साथ मुकाबला किया। इसके साथ ही अपनी आवाज भी बुलंद करते रहे और विरोधियों को बड़ी फटकार लगाते रहे।

तू राम न जपहि अभागी,
वेद पुरान पढ़त अस पांडे,
खर चंदन जैसे भारा,
राम नाम तत समझत नाहीं,
अति पढ़े मुखि छारा॥

इसी प्रकार कबीर अपने नीति परक, मंगलकारी सुझावों के द्वारा जनता को आगाह करते रहे ओर चेतावनी देते रहे कि मेरी बात ध्यान से सुनो और उस पर अमल करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

घर- घर हम सबसों कही, सवद न सुने हमारा।
ते भव सागर डुबना, लख चौरासी धारा॥

कबीर साहब समाज में तुरंत परिवर्तन चाहते थे। आशानुकूल परिवर्तन नहीं होते देखकर वे व्यथित हो उठते थे। उन्हें दुख होता था कि उनकी आवाज पर उनके सुझाव पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

आधुनिक संदर्भ में भी यही बात कही जा सकती है। आज भी भारतीय समाज की वही स्थिति है, जो कबीर काल में थी। सामाजिक आडंबर, भेद-भाव, ऊँच-नीच की भावना आज भी समाज में व्याप्त है। व्याभिचार और

भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है। आए दिन समाचार पत्रों आग लगी, दहेज मौत, लूट, हत्या और आत्महत्या की खबरें छपती रहती हैं।

समाज के सब स्तर पर यही स्थिति है। "राजकीय अस्पतालों में जो रोगी इलाज के लिए भर्ती होते हैं, उन्हें भर पेट भोजन और साधारण औषधि भी नहीं मिलती। इसके अलावे अस्पताल में कई तरह की अव्यवस्था और अनियमितता है।"

देश के संतों, चिंतकों तथा बुद्धिजीवियों ने बराबर इस बात की उद्घोषणा की है कि "नीति- विहीन शासन कभी सफल नहीं हो सकता। नीति और सदाचार अध्यात्म की जड़ है। देश की अवनति तथा सामाजिक दुर्व्यवस्था का मुख्य कारण यही है कि आज हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को भूल कर पाश्चात्य चकाचौंध की ओर आकर्षित हो गए हैं। ऊपरी आडंबर और शान-शौकत को ही मुख्य वस्तु मान कर हम अपनी शालीनता, गरिमा तथा जीवन मूल्यों को भूल गए हैं, जिसका फल है—पतन, निराशा और दुख। आज के संसार में सब कुछ उल्टा हो रहा है और इसीलिए लोग सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। कबीर- पंथ की परंपरा में स्वामी अलखानंद लिखते हैं –

सिंह ही से स्यार लड़ाई में जीति।
साधु करे चोरि चोर को नीति।
लड्डू लेई खात स्वाद आवे तीति।
मरीच के खात स्वाद मीठ मीति।
ऐसी ही ज्ञान देखो उल्टा रीति॥

इस नाजुक परिस्थिति से अध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही हमें उबार सकती है। कबीर- साहित्य ऐसे ही विचारों, भावनाओं और शिक्षाओं की गहरी है। उसमें अनमोल मोती गुंथे हैं। उन्होंने मानव जीवन के सभी पक्षों को स्पर्श किया है। अत: आज की स्थिति में कबीर साहित्य हमारा मार्ग दर्शन करने में पूर्ण रूप से सक्षम है।

एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्रह्मन को सुद्र।
हमहुं राम का, तुमहुं राम का, राम का सब संसार॥

कबीर का उपदेश सार्वभौम, सार्वजनिक, मानवतावादी तथा विश्वकल्याणकारी है। उन्होंने सामान्य मानव धर्म अथवा समाज की प्रतिष्ठा के लिए जिस साधन का प्रयोग किया था, वह सांसारिक न होकर आध्यात्मिक था।

आधुनिक संदर्भ में कबीर का कहा गया उपदेश सभी दृष्टियों से प्रासंगिक है। जिस ज्ञान और अध्यात्म की चर्चा आज के चिंतक और संत कर रहे हैं, वही उद्घोषणा कबीर ने पंद्रहवीं शताब्दी में की थी। अतः आज भी कबीर साहित्य की सार्थकता और प्रासंगिकता बनी हुई है। आज के परिवेश में जरूरी है कि इसका प्रसार किया जाए, ताकि देश और समाज के लोग इससे लाभान्वित हो सकें।

सांप्रदायिक तनाव की स्थिति आज देश में सर्वाधिक चिंतनीय है। देश में संप्रदाय के नाम पर लोगों को आपस में खूब लड़ाया जाता है। राजनैतिक दल एवं राजनेता स्वयं जातिवाद या सांप्रदायवाद के प्रतीक बन गए हैं। आज हर वर्ष देश के कुछ भागों में सांप्रदायिक दंगे का भड़क जाना और सैकड़ों बेगुनाहों का खून बह जाना, सामान्य बात हो गई है।

1947 ई. में सांप्रदायिकता को आधार बनाकर देश का विभाजन कर दिया गया। यही सांप्रदायिकता की आग लगातार बढ़ती ही गई, अब तो स्थिति इतनी अधिक उत्तेजक हो गई है कि इस ओर सभी बुद्धिजीवियों और शुभ- चिंतकों का ध्यान आकृष्ट होने लगा है। प्रत्येक साल कही-कहीं दंगा होता रहता है। हजारों लोग हर दंगे में मारे जाते हैं। हजारों गिरफ्तारियाँ होती हैं। लाखों- करोड़ों की संपत्ति जला दी जाती है। यह सब आपसी धार्मिक मतभेदों की वजह से होता है। आवश्यकता है कि सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रखकर, भारत के समस्त नागरिकों को बंधुत्व की भावना सहयोगपूर्वक रहने के प्रति जागरूक किया जाए।

हिंदू तुरुक की एक राह में, सतगुरु है बताई।
कहै कबीर सुनहू हो संतों, राम न कहेउ खुदाई॥

संत महात्मा कबीर ने सांप्रदायिकता का विरोध कड़े शब्दों में किया है। कबीर साहब से अधिक जोरदार शब्दों में सांप्रदायिक एकता का प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।

सोई हिंदू सो मुसलमान, जिनका रहे इमान।
सो ब्राह्मण जो ब्राह्म गियाला, काजी जो जाने रहमान॥

महात्मा के अनुसार सच्चा हिंदू या मुसलमान वही है, जो इमानदार है और निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करता है। सारे अनर्थों की जड़ यही बेईमानी है। आदमी बईमान हुआ, तब सब अनर्थ कामों की शुरुआत हो गई। आज समाज में चारों तरफ बेईमानी के कारण ही वातावरण दुखी और असहनीय हो रहा है।

आज का मनुष्य एक ओर ईश्वर की पूजा करता है और दूसरी ओर मनुष्य का तिरस्कार करता है। प्रेम के महत्व को कबीर साहब इस प्रकार बताते हैं –

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर के अनुसार प्रेम ही ऐसा तत्त्व है, जो पारस्परिक मैत्री का भाव लाता है और कटुता को समाप्त करता है।

काहि कबीर वे दूनों भूले, रामहि किन्हु न पायो।
वे खस्सी वे गाय कटावै, वादाहि जन्म गँवायो॥
जेते औरत मरद उवासी, सो सब रुप तुम्हारा।
कबीर अल्ह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥

हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए कबीर के उपदेश और उनके द्वारा किया गया कार्य आज सामान्य लोगों के अंदर फैलाने और बताने आवश्यक हैं। कबीर ने धार्मिक रूढ़ियों उपासना संबंधी मूढ़ मान्यताओं तथा मंदिर-मस्जिद विषयक अंध आस्थाओं के अंतर्विरोधों को निर्ममतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था।

हिंदू कहे वह राम हमारा, तुरुक कहे रहिमाना
सत गहे, सतगुरु को चीन्हे, सतनाम विश्वासा,
कहै कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा।

वे कहते, प्रत्येक मानव को गुरू भक्ति और साधन का अभ्यास करना चाहिए। इस सत्य की प्राप्ति से सब अवरोध समाप्त हो जाते हैं।

जो सुख राम भजन में, वह सुख नहीं अमीरी में।

सुख का आधार धन-संपत्ति नहीं है। इसके अभाव में भी मानव सुख-शांति का जीवन जी सकता है।

चाह मिटी, चिंता मिटी मनवा बेपरवाह,
जिसको कुछ नहीं चाहिए वह शहनशाह।

वे कहते हैं, धरती पर सभी कष्टों की जड़ वासना है, इसके मिटते ही चिंता भी समाप्त हो जाती है और शांति स्वमेव आने लगती है। कबीर के कहने का तात्पर्य है कि पूजा-पाठ साधना कोई शुष्क चीज नहीं है, बल्कि इसमें आनंद है, तृप्ति है और साथ ही सभी समस्याओं का समाधान। इसलिए इसको जीवन में सर्वोपरि स्थान देना चाहिए। साधना के प्रति लोगों के हृदय में आकर्षण भाव लाने हेतु उन्होंने अपना अनुभव बताया।

इस घट अंतर बाग बगीचे, इसी में सिरजन हारा,
इस घट अंतर सात समुदर इसी में नौ लख तारा।

गुरू के बताए साधन पर चलकर ध्यान का अभ्यास करने को वे कहते हैं। इससे दुखों का अंत होगा और अंतर प्रकाश मिलेगा। गुरू भक्ति रखकर साधन पथ पर चलनेवाले सभी लोगों को आंतरिक अनुभूति मिलती है।

कबीर का प्रेम

कंलि खोटा जग अंधेरा, शब्द न माने कोय,
जो कहा न माने, दे धक्का दुई और।

महात्मा कबीर किसी भी स्थिति में हार मानने वाले नहीं थे। वे गलत लोगों को ठीक रास्ते पर लाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने दो-चार धक्के खाना भी पसंद था। इस प्रकार कहा जाता है कि कबीर लौह पुरुष थे। वे मानव को प्रेम को अपनाने कहते हैं। उनका कहना है कि ईश्वर का दूसरा नाम प्रेम है। इसी तत्त्व को अपनाने पर जीवन की बहुत सारी समस्याएँ स्वत: सुलझ जाती हैं।

मैं कहता सुरजनहारी, तू राख्यो अरुझाई राखे

कबीर साहब सदा सीधे ढ़ग से जीवन जीने की कला बताते थे। उनका कहना था कि प्रेम के अभाव में यह जीवन नारकीय बन जाता है।

कबीर प्याला प्रेम का अंतर दिया लगाया,
रोम- रोम से रमि रम्या और अमल क्या लाय,
कबीर बादल प्रेम का हम पर वरस्या आई,
अतरि भीगी आत्मा, हरी भई बन आई।

यही 'प्रेम' सब कुछ है, जिसे पान कर कबीर धन्य हो गये। इस बादल रूपी प्रेम की वर्षा में स्नान कर कबीर की आत्मा तृप्त हो गई और उसका मन आनंद विभोर हो उठा। वे कहते हैं, प्रेम ही सर्व है। उसी के आधार पर व्यक्ति एक-दूसरे के साथ बंधुत्व की भावना को जागृत कर सकता है। आज के परिवेश में इसी बंधुत्व की भावना के प्रसार की नितांत आवश्यकता है। कबीर साहब की वाणी आज भी हमें संदेश दे रही है कि संसार में कामयाब होने का एक-मात्र मार्ग धर्म और समाज की एकता है।

संत कबीर स्वयं ऐसे परिवार में जन्मे थे, जो तत्कालीन समाज व्यवस्था में अस्पृश्य था। उन्होंने स्वयं वर्ण-व्यवस्था की कटुताओं को झेला था। कबीर साहब मध्यकाल में ब्राह्मण-व्यवस्था के विरुद्ध इस विद्रोह के सबसे बड़े नेता

माने जाते हैं। आपने सर्वप्रथम भक्ति परंपराओं का प्रचार किया, जोकि ब्राह्मण-व्यवस्था के विरुद्ध थी। आपने जिस तरह ब्राह्मण-व्यवस्था के गढ में काशी में रहकर, इस व्यवस्था पर प्रहार करते रहे, यह अति सराहनीय माना जाता है। यहाँ के ब्राह्मणों ने तपस्थली को ब्राह्मण और क्षत्रियों तक ही सीमित कर दिया था। कबीर साहब ने इसके खिलाफ नया मूल्य स्थापित किया। उन्होंने वहाँ, 'हरिजन सई न जाति' भक्त से समान कोई दूसरी जाति नहीं है। उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा कि जो भक्त है, वह यदि अस्पृश्य है, तब भी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ है। उन्होंने इस प्रकार भक्ति के हथियार से वर्णाश्रम अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर प्रहार किया। वह नया मूल्य स्थापित करते हुए कहते हैं –

"जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान॥"

तत्कालीन समाज व्यवस्था में जो व्यक्ति स्वयं नहीं पाता था, उसे अंग्रेज विचारक कीलिन विल्सन ने "आउट साइडर" कहा था। भक्ति काल का प्रत्येक कवि "आउट साइडर" कहलाया, क्योंकि ये कवि रूढ़ियों, अन्यायपूर्ण व्यवस्थाओं एवं परंपराओं को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब मध्य काल के ऐसे पहले कवि थे, जिन्हें "आउट साइडर" कहा गया। कबीर लोक, वेद, शास्त्र तथा मंत्र को छोड़कर चलना चाहते थे। कबीर साहब को संग्राम का योद्धा कहा जाए, तो अच्छा होगा। कबीर का मानना था कि अगर भगवान को वर्ण-विचार कहना होता, तो वह जन्म से ही तीन विभाजक खींच देते। उत्पत्ति की दृष्टि से समस्त जीव समान हैं।

"जौ पै करता बरण बिचारै।
तौं जनमत तीनि डांडी किन सारे॥
उत्पत्ति ब्यंद कहाँ थै आया, जोति धरि अरु लगी माया।
नहिं कोइ उँचा नहिं कोइ नीचे, जाका लंड तांही का सींचा॥
जो तू वामन वमनीं जाया, तो आने बाट हवे काहे न आया।
जो तू तुरक तुरकनीं जाया तो भीतरि खतना क्यूनें करवाया॥

पंडित को वह वटूक्ति सुनाते हुए कहते हैं, जैसे गदहा चंदन का भार वहन करता है, पर उसकी सुगंधि से अभिमूढ नहीं होता। उसी तरह पंडित भी वेद पुराण पढ़कर राम नाम के वास्तविक तत्त्व नहीं पाता।

पांडे कौन कुमति तोहि लगि, तू राम न जपहि आभागा।
वेद पुराण पढ़त अस पांडे, खर चंदन जैसे भारा॥

राम नाम तत समझत नाहीं, अति अरे मुखि धारा।
वेद पढता का यह फल पाडै राबधटि देखौ रामा।।

कबीर के अनुसार ब्राह्मण को तत्त्वानुभव नहीं होने के कारण उसकी बात कोई नहीं मानता है।

पंडित संति कहि रहे, कहा न मानै कोई।
ओ अशाध एका कहै, भारी अचिरज होई।।

कबीर साहब ब्राह्मण को जाति-पाति बाँटने का जिम्मेदार मानते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण का ज्ञान बासी है और उसका व्यक्तित्त्व पाखंडपूर्ण है –

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात।
दुल्हा-दुल्हिन मिल गए, फीको पड़ी बारात।

तत्कालीन ब्राह्मण समाज के लोला ज्ञान पर प्रहार करते हुए वे कहते हैं–

चार यूं वेद पढ़ाई करि, हरि सूंन लाया हेत।
बाँलि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत।।

कबीर के अनुसार मनुष्य जन्म से समान है, लेकिन समाज ने उसे रुढियों में जकड़ लिया है तथा भाँति-भाँति की क्यारियाँ गढ़ ली गई हैं। इस प्रकार एक क्यारी का बिखरा, दूसरी क्यारी में नहीं जा सकता है, इस प्रकार कवि जातिवाद और छुआ-छूत सबको पाखंड मानते हैं और कहते हैं –

पाड़ोसी सू रुसणां, तिल-तिल सुख की होणि।
पंडित भए सरखगी, पाँणी पीवें छाँणि।।

पंडित सरावगी हो गए हैं और पानी को छान कर पीने लगे हैं, अर्थात वे ढ़ोंग करते हैं और दूसरे के धर्म की अनावश्यक नुक्ता-चीनी और छान-बीन करते रहते हैं। आपके अनुसार पंडित का गोरख धंधा बटमारी और डकैती है। पंडित ने इस संसार को पाषाण-मूर्तियों से भर दिया है और इसी के आधार पर पैसा कमाता है।

काजल केरि कोठरी, मसिके कर्म कपाट।
पाहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी बाट।।

कबीर साहब जात-पात की तुलना में कर्म को श्रेष्ट मानते हैं –

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जेकरणी उँच न होई
सोवन कलस सुरै भरया, साधू निंधा सोई।।

अपनी पूरी जिंदगी में कबीर ने सामाजिक कुरीतियों के झाड़- झंखाड़ को साफ करने और उच्चतर मानव का पथ प्रशस्त करने का प्रयास किया।

कबीर साहब का भक्ति में अत्यधिक विश्वास था। भक्ति से युक्त व्यक्ति न तो ब्राह्मण होता है और न चंडाल, बल्कि वह सिर्फ भक्त होता है। कबीर साहब ने समाज के आपसी मतभेद को मिटाकर इस प्रकार का संदेश दिया है, जैसे हल्दी पीली होती है और चूना श्वेत, पर दोनों मिलकर अपना रंग मिलाकर लाल रंग की होली में परिणत हो जाते हैं–

कबीर हरदी पीयरी, चुना उजल भाय।
राम सनेही यूँ मिले, दन्यूं बस गमाय॥

कबीर की उपर्युक्त रमैनी के अनुसार, राम के भक्त विभिन्न जातियों का परित्याग कर एकाकार हो जाते हैं और वे अपने विभिन्न सांप्रदायिक भाव ईश्वर प्रेम की लालिमा में समाहित कर देते हैं। इस प्रकार कावा और काशी या राम और रहीम का भेद मिट जाता है, सब एक ही हो जाते हैं –

कावा फिर काशी भया, राम भया रहीम।
मोठ चून मैदा भया, बैठो कबीरा जीम॥

इस प्रकार कबीर साहब भक्ति के द्वारा सामाजिक पाथेवय को मिटाते हैं और मन के विधान का अतिक्रमण करने का उपदेश देते हैं।

कबीर की साखी

एक सामाजिक विश्लेषण

हिंदी साहित्य में कबीर का व्यक्तित्त्व अनुपम है। गोस्वामी तुलसीदास को छोड़ कर इतना महिमामण्डित व्यक्तित्त्व 'कबीर' के सिवा अन्य किसी का नहीं है। कबीर की उत्पत्ति के संबंध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कुछ लोगों के अनुसार वे जगद्गुरु रामानन्द स्वामी के आशीर्वाद से काशी की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ब्राह्मणी उस नवजात शिशु को लहरतारा ताल के पास फेंक आयी। उसे नीरु नाम का जुलाहा अपने घर ले आया। उसीने उसका पालन-पोषण किया। बाद में यही बालक कबीर कहलाया। कतिपय कबीर पन्थियों की मान्यता है कि कबीर की उत्पत्ति काशी में लहरतारा तालाब में उत्पन्न कमल के मनोहर पुष्प के ऊपर बालक के रूप में हुई। एक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार किसी योगी के औरस तथा प्रतीति नामक देवाङ्गना के गर्भ से भक्तराज प्रल्हाद ही संवत 1455 ज्येष्ठ शुक्ल 15 को कबीर के रूप में प्रकट हुए थे। कुछ लोगों का कहना है कि वे जन्म से मुसलमान थे और युवावस्था

में स्वामी रामानन्द के प्रभाव से उन्हें हिंदु धर्म की बातें मालूम हुईं। एक दिन, एक पहर रात रहते ही कबीर पञ्चगंगा घाट की सीढ़ियों पर गिर पड़े। रामानन्द जी गंगास्नान करने के लिये सीढ़ियाँ उतर रहे थे कि तभी उनका पैर कबीर के शरीर पर पड़ गया। उनके मुख से तत्काल ृराम-राम' शब्द निकल पड़ा। उसी राम को कबीर ने दीक्षा-मन्त्र मान लिया और रामानन्द जी को अपना गुरु स्वीकार कर लिया। कबीर के ही शब्दों में-'हम कासी में प्रकट भये हैं, रामानन्द चेताये'।

अन्य जनश्रुतियों से ज्ञात होता है कि कबीर ने हिंदु-मुसलमान का भेद मिटा कर हिंदु-भक्तों तथा मुसलमान फकीरों का सत्संग किया और दोनों की अच्छी बातों को हृदयंगम कर लिया।

जनश्रुति के अनुसार उन्हें एक पुत्र कमल तथा पुत्री कमाली थी। इतने लोगों की परवरिश करने के लिये उन्हें अपने करघे पर काफी काम करना पड़ता था। साधु संतों का तो घर में जमावड़ा रहता ही था। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे-

'मसि कागद छूवो नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'

उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे, मुँह से भाखे और उनके शिष्यों ने उसे लिख लिया। आप के समस्त विचारों में रामनाम की महिमा प्रतिध्वनित होती है। वे एक ही ईश्वर को मानते थे और कर्मकाण्ड के घोर विरोधी थे। अवतार, मूर्त्ति, रोजा, ईद, मसजिद, मंदिर आदि को वे नहीं मानते थे।

कबीर के नाम से मिले ग्रंथों की संख्या भिन्न-भिन्न लेखों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। एच.एच. विल्सन के अनुसार कबीर के नाम पर आठ ग्रंथ हैं। विशप जी.एच. वेस्टकॉट ने कबीर के 84 ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की तो रामदास गौड ने 'हिंदुत्व' में 71 पुस्तकें गिनायी हैं।

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं- रमैनी, सबद और सारवी यह पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, पूरबी, ब्रजभाषा आदि कई भाषाओं की खिचड़ी है।

कबीर परमात्मा को मित्र, माता, पिता और पति के रूप में देखते हैं। यही तो मनुष्य के सर्वाधिक निकट रहते हैं। वे कभी कहते हैं-

'हरिमोर पिउ, मैं राम की बहुरिया' तो
कभी कहते हैं, 'हरि जननी मैं बालक तोरा'

उस समय हिंदु जनता पर मुस्लिम आतंक का कहर छाया हुआ था। कबीर ने अपने पंथ को इस ढंग से सुनियोजित किया जिससे मुस्लिम मत की ओर झुकी हुई जनता सहज ही इनकी अनुयायी हो गयी। उन्होंने अपनी भाषा सरल

और सुबोध रखी ताकि वह आम आदमी तक पहुँच सके। इससे दोनों सम्प्रदायों के परस्पर मिलन में सुविधा हुई। इनके पंथ मुसलमान-संस्कृति और गोभक्षण के विरोधी थे।

कबीर को शांतिमय जीवन प्रिय था और वे अहिंसा, सत्य, सदाचार आदि गुणों के प्रशंसक थे। अपनी सरलता, साधु स्वभाव तथा संत प्रवृत्ति के कारण आज विदेशों में भी उनका समादर हो रहा है।

वृद्धावस्था में यश और कीर्त्ति की मार ने उन्हें बहुत कष्ट दिया। उसी हालत में उन्होंने बनारस छोड़ा और आत्मनिरीक्षण तथा आत्मपरीक्षण करने के लिये देश के विभिन्न भागों की यात्राएँ कीं। इसी क्रम में वे कालिंजर जिले के पिथौराबाद शहर में पहुँचे। वहाँ रामकृष्ण का छोटा सा मन्दिर था। वहाँ के संत भगवान गोस्वामी जिज्ञासु साधक थे किंतु उनके तर्कों का अभी तक पूरी तरह समाधान नहीं हुआ था। संत कबीर से उनका विचार-विनिमय हुआ। कबीर की एक साखी ने उन के मन पर गहरा असर किया-

'बन ते भागा बिहरे पड़ा, करहा अपनी बान।
करहा बेदन कासों कहे, को करहा को जान॥'

वन से भाग कर बहेलिये के द्वारा खोये हुए गड्ढे में गिरा हुआ हाथी अपनी व्यथा किस से कहे ?

सारांश यह कि धर्म की जिज्ञासा सें प्रेरित हो कर भगवान गोसाई अपना घर छोड़ कर बाहर तो निकल आये और हरिव्यासी सम्प्रदाय के गड्ढे में गिर कर अकेले निर्वासित हो कर असंबाद्य्य स्थिति में पड़ चुके हैं।

मूर्त्ति पूजा को लक्ष्य करते हुए उन्होंने एक साखी हाजिर कर दी-
पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजौंपहार।
त ते तो चाकी भली, जासे पीसी खाय संसार॥
119 वर्ष की अवस्था में उन्होंने मगहर में देह त्याग किया।

,,

कबीरदास जी का व्यक्तित्त्व संत कवियों में अद्वितीय है। हिन्दी साहित्य के 1200 वर्षों के इतिहास में गोस्वामी तुलसीदास जी के अतिरिक्त इतना प्रतिभाशाली व्यक्तित्त्व किसी कवि का नहीं है। कबीर के दर्शन पर शोध 18वीं शताब्दी में आरम्भ हो चुका था किन्तु उसका वैज्ञानिक विवेचन सन् 1903 में एच.एच.विन्सन ने किया। उन्होंने कबीर पर 8 ग्रन्थ लिखे। इसके बाद विशप जी. एच.वेप्टकॉट ने कबीर द्वारा लिखित 84 ग्रन्थों की सम्पूर्ण सूची प्रस्तुत की। इसी

प्रकार हरिऔध जी द्वारा सम्पादित कबीर वचनावलि में 21 ग्रन्थ, डॉ रामकुमार वर्मा द्वारा रचित हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में 61 ग्रन्थ तथा नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट में 140 ग्रन्थों की सूचि मिलती है। कबीर ग्रन्थावलि में कुल 809 साखियाँ, 403 पद और 7 रमैनियाँ संग्रहित हैं।

साहित्यिक क्षेत्र में पदों और साखियों का ही अधिक प्रचार हुआ परन्तु बीजक प्राय: उपेक्षित रहा। अमृतसर के गुरुद्वारे में बीजक का ही पाठ होता है। कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों का सार बीजक में उपलब्ध है। कबीर का प्रमुख साहित्य रमैनी, साखी और शब्द बीजक में उपलब्ध है। डॉ पारसनाथ तिवारी ने बीजक के 32 संस्करणों की सूची दी है।

हम कह सकते हैं कि कबीर साहित्य तीन खण्डों में विभक्त है–रमैनी, साखी और शब्द। रमैनी में जगत्, साखी में जीव और शब्द में ब्रह्म सम्बन्धी विचार हैं। रमैनी शब्द का अर्थ है संसार में जीवों के रमण का विवेचन। साखी शब्द संस्कृत के साक्षी से आया है जिसका अर्थ है–गवाह। साखी में संत कबीर ने उन तथ्यों का वर्णन किया है जिसका अपने जीवन में स्वयं साक्षात्कार किया। शब्द (सबद) का प्रयोग दो अर्थों में किया है–एक तो परमतत्त्व के अर्थों में, और दूसरे पद के अर्थ में।

कबीर की साखी-2

पद कबीर की साखी वद 25, 2011

:: चितावणी ::

कबीर नौबति आपनी, दिन दस लेहु बजाइ।

ए पुर पट्टन ए गली, बहुरि न देखहु आइ।।99।।

कबीर कहते हैं कि हे जीवों ! चेत जाओ। जिस वैभव में तुम लिप्त हो, वह कुछ दिनों का परचम है अर्थात् क्षणिक है। तुम्हारी मृत्यु अवश्यंभावी है। फिर इस पुर, नगर और गली को न देख सकोगे।

जिनके नौबति बाजती, मैंगल बँधते बारि।

एकै हरि के नाँव बिन, गए जनम सब हारि।।100।।

जिनके द्वार पर वैभव-सूचक नगाड़े बजते थे और मतवाले हाथी झूमते थे, उनका जीवन भी प्रभु के नाम-स्मरण के अभाव में सर्वथा व्यर्थ ही हो गया।

ढोल दमामा डुगडुगी, सहनाई औ भेरि।
औसर चले बजाइ करि, है कोइ लावै फेरि।।101।।

इस जीवन में वैभव प्रदर्शन हेतु बाजे जैसे ढोल, धौंसा, डुगडुगी, शहनाई और भेरी विशेष अवसरों पर बजाए जाते हैं। परन्तु जीवन इतना क्षण-भंगुर है कि जो अवसर बीत गया, उसे पुनः वापस नहीं लाया जा सकता है।

सातौ सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, बैठन लागे काग॥102॥

जिन मंदिरों और प्रासादों में सातों स्वर के बाजे बजते थे और विभिन्न प्रकार के राग गाए जाते थे, वे आज खाली पड़े हुए हैं और उन पर कौए बैठते हैं। सांसारिक वैभव की यही क्षणभंगुरता है।

कबीर थोड़ा जीवना, माड़ै बहुत मँडान।
सबही ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलतान॥103॥

कबीर कहते हैं कि क्षणिक जीवन के लिए मनुष्य बड़े-बड़े आयोजन करता है, किन्तु चाहे वह बहुत बड़ा राजा या सुलतान हो या साधारण, दरिद्र मनुष्य, सभी की बड़े उत्साह से निर्मित योजनाएँ ध्वस्त हो जाती है। अर्थात् राजा-रंक भी जाते हैं और उनकी योनजाएँ भी ध्वस्त हो जाती हैं।

इक दिन ऐसा होइगा, सब सौ परै बिछोह।
राजा राना छत्रपति, सावधान किन होइ॥104॥

कबीर चेतावनी देते हैं कि चाहे कोई राजा, राणा या छत्रपति हो, सबके लिए एक ऐसा दिन आएगा, जब उसे संसार से सब कुछ त्यागकर इस लोक से जाना होगा। इसलिए हे मनुष्यों ! समय रहते ही सावधान क्यों नहीं हो जाते ?

कबीर पट्टन कारिवाँ, पंच चोर दस द्वार।
जम राना गढ़ भेलिसी, सुमिरि लेहु करतार॥105॥

कबीर कहते हैं कि जीव (सौदागर) इस शरीर रूपी नगर को एक सुरक्षित स्थान समझकर सारा सांसारिक व्यवहार अर्थात् व्यापार टिका हुआ है। किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं कि इस शरीर रूपी नगर में पाँच चोर (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह) विद्यामन हैं और इसमें दस द्वार भी हैं। यह वैसा सुरक्षित और अभेद्य दुर्ग नहीं है, जैसा कि अज्ञानी जीवों ने समझ रखा है। इस दुर्ग पर यमराज का आक्रमण भी होगा और वह क्षणभर में इस गढ़ को ध्वस्त कर देगा। इसलिए हे जीवों ! स्रष्टा का स्मरणकर लो।

कबीर कहा गरबियो, इस जोवन की आस।
केसू फूले दिवस दोइ, खंखर भये पलास॥106॥

कबीर कहते हैं कि यौवन पर गर्व करना व्यर्थ है। यह क्षणभंगुर है। पलाश के फूल के समान इसकी बहार थोड़े दिनों के लिए है। जैसे यह फूल थोड़े ही

दिनों में मुर्झा कर गिर जाता है, वैसे ही जवानी की प्रफुल्लता भी अल्प दिनों की होती है। कुछ दिनों के पश्चात जैसे पलाश पत्र-पुष्प-विहीन होकर ठूँठमात्र रह जाता है, वैसे ही यह शरीर भी यौवन-विहीन होकर कंकालमात्र रह जाता है।

कबीर कहा गरबियो, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबो नहीं, ज्यों काँचली भुवंग॥107॥

कबीर कहते हैं कि इस सुन्दर शरीर को देखकर क्यों गर्व करते हो? मृत्यु होने पर यह शरीर जीव को वैसे ही फिर नहीं मिल सकता, जैसे सर्प केंचुल को त्याग देने पर पुनः उसे धारण नहीं कर सकता।

कबीर कहा गरबियो, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि परौ भुई लोटना, ऊपरि जमिहै घास॥108॥

कबीरदास कहते हैं कि ऊँचे-ऊँचे महलों को देखकर क्यों गर्व करते हो? शीघ्र ही निधन होने पर जमीन के अन्दर लेटना होगा अर्थात् दफना दिए जाओगे और ऊपर घास जम जाएगी।

कबीर कहा गरबियो, चाँम पलेटे हाड़।
हैबर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा गाड़॥109॥

कबीरदास कहते हैं कि चमड़े से लपेटी हुई हड्डियों पर क्यों गर्व करते हो ? जो लोग श्रेष्ठ घोड़ों पर चढ़ते हैं और जिनके सिरों पर छत्र लगते हैं, वे भी एक दिन मिट्टी में दफना दिए जाते हैं।

कबीर कहा गरबियो, काल कर केस।
नाँ जानौं कहँ मारिहै, कै घर कै परदेस॥110॥

कबीरदास कहते हैं कि काल ने अपने हाथों से तुम्हारे केश को पकड़ रखा है। इसलिए तुम व्यर्थ में क्यों गर्व करते हो? घर हो या परदेश, वह तुम्हें कहाँ मार डालेगा यह तुम भी नहीं जानते हो।

ऐसा यहु संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के व्यौहार में, झूठै रंगि न भूल॥111॥

यह संसार सेमर के फूल के समान है, जो ऊपर से देखने में सुन्दर और मोहक प्रतीत होता है, किन्तु उसके भीतर कोई तत्त्व नहीं होता। अल्पकाल के जीवन और उसकी विरंगात्मक भुलावे में नहीं आना चाहिए।

जीवन मरन बिचारि करि, कूरे काँम निवारि।
जिहिं पंथा तोहि चालनां, सोई पंथ सँवारि॥112॥

कबीरदास कहते हैं कि जीवन-मरण का विचार कर अर्थात् यह समझ ले कि जीवन थोड़े दिन का है, अन्ततः मरना है। इसलिए अक्षम्य कर्मों का परित्याग कर और जिस भक्ति मार्ग पर तुझे चलना है, उसे अभी से सुधार ले।

राखनहारे बाहिरा, चिड़ियौं खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै, चेति सकै तौ चेति॥113॥

तेरे आध्यात्मिक जीवन-क्षेत्र का रक्षक बाहर ही बाहर है अर्थात् तुझे कोई सद्गुरु नहीं मिला और ऊपर से विषय-वासना रूपी पक्षी तेरे खेत को खाए जा रहे हैं। तू अब भी चेत जा और थोड़ा-बहुत जो बचा सके, उसे बचा ले अर्थात् अब भी आध्यात्मिक जीवन को बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित कर ले।

हाड़ जरै ज्यौं लाकड़ी, केस जरैं ज्यों घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास॥114॥

मृत्यु के उपरान्त हड्डियाँ लकड़ी के समान जलती हैं और केश घास के समान। सारे शरीर को जलता देखकर कबीर को संसार से विराग हो गया।

कबीर मंदिर ढहि पड़ी, इंर्ट भई सैवार।
कोई चेजारा चिनि गया, मिला न दूजी बार॥115॥

कबीर कहते हैं कि अद्भुत स्रष्टा ने इस सुन्दर शरीर (मंदिर) को बनाया है, किन्तु एक दिन वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और उसकी हड्डियों पर, जहाँ वह दफनाया जाता है, घास-फूस जम जाती है। उसका निर्माता उसी शरीर (मंदिर) को फिर बनाने के लिए नहीं मिलता।

कबीर देवल ढहि पड़ा, इंर्ट भई संवार।
करि चिजारा सौं प्रीतिड़ी, ज्यँ ढहै न दूजी बार॥116॥

कबीर कहते हैं कि यह शरीर रूपी देवालय ध्वस्त हो गया और इसकी इंर्टों पर घास-फूस जम गई अर्थात् शरीर का मांस और हड्डियाँ जो दफनाई गई थीं, उन पर अब घास-फूस दिखलाई देती है। हे जीव! तू इसके निर्माता प्रभु से प्रेम कर, जिससे दूसरी बार इस देवालय के ढहने का अवसर ही न आए।

कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरै लालि।
दिवस चारि पा पेखनाँ, बिनसि जाइगा कालि्ह॥117॥

कबीर कहते हैं कि यह शरीर लाक्षागृह के समान है, जो हीरे-लाल से जड़ा गया है अर्थात् बहुमूल्य बनाया गया है। किन्तु यह चार दिन का दिखावा है और अल्पकाल में ही विनष्ट हो जायगा।

कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बाँधी एह।
दिवस चारि का पेखनाँ, अंति खेह की खेह॥118॥

कबीर कहते हैं कि यह शरीर ऐसा है जैसे किसी ने धूल एकत्र कर कोई पिंड या पुड़िया बाँधकर रख दिया हो। यह तो अल्पकाल का दिखावा है। जिस मिट्टी से यह बना है, अन्ततः उसी मिट्टी में मिल जाता है।

कबीर जे धंधै तो धूलि, बिन धंधै धूलै नहीं।
ते नर बिनठे मूलि, जिनि धंधै मैं ध्याया नहीं॥119॥

कबीर कहते हैं कि कर्मों से भागने से काम नहीं चलेगा। यदि कर्म को करते रहोगे तो तुम्हारा अन्तःकरण धुल जाएगा। तुम स्वच्छ हो जाओगे। बिना कर्म किये स्वच्छता नहीं आती। कर्म से कोई नष्ट नहीं होता। वही व्यक्ति मूलतः नष्ट हो जाते हैं, जो कर्म में ईश्वर का ध्यान नहीं रखते।

कबीर सुपनै रैनि कै, ऊघड़ि आए नैन।
जीव परा बहु लूट में, जागै लेन न देन॥120॥

कबीर कहते हैं कि जीवन अज्ञान रूपी रात्रि का स्वप्न है। उसमें जीव नाना प्रकार के सुख-दुःख, लाभ-हानि का अनुभव करता है। परन्तु वे सब अनुभव स्वप्न के समान हैं। ज्ञान-चक्षु खुल जाने पर जीव को यह विश्वास हो जाता है कि अज्ञान रूपी निद्रा में पड़े हुए लाभ-हानि का जीवन स्वप्नवत् व्यर्थ है।

कबीर सुपनैं रैनि कै, पारस जीय मैं छेक।
जे सोऊँ तौ दोइ जनाँ, जे जागूँ तौ एक॥121॥

कबीर कहते हैं कि अज्ञान की रात्रि में जब जीव स्वप्न देखता है तो ब्रह्म और जीव में सर्वथा पृथक प्रतीत होता है। वह जब तक इस अज्ञान-निद्रा में रहता है, तब तक आत्मा और परमात्मा दो अलग-अलग जान पड़ते हैं। जब वह अज्ञान-निद्रा से जगता है, तब उसे दोनों एक ही प्रतीत होते हैं।

कबीर इस संसार में, घने मनुष मतिहीन।
राम नाम जानै नहीं, आये टापा दीन॥122॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार में अधिकतर मनुष्य सर्वथा बद्धिमान होते हुए भी वे अपनी आँखों पर अज्ञान की पट्टी बाँधे रहते हैं। इसीलिए वे राम नाम के मर्म को नहीं जानते।

कहा कियो हम आइ करि, कहा कहैंगे जाइ।
इतके भये न उत के, चाले मूल गँवाइ॥123॥

जीव को स्वयं पर पछतावा हो रहा है कि इस संसार में आकर हमने क्या किया, इस विषय में यहाँ से जाने के बाद प्रभु के सामने हम क्या कहेंगे ? हम न तो इस लोक के हुए, न परलोक के। हमने अपना नैसर्गिक सरलता भी गँवा दिया।

आया अनआया भया, जे बहु राता संसार।
पड़ा भुलावा गाफिलाँ, गये कुबुद्धी हारि॥124॥

जीव संसार के विषयों में इतना अनुरक्त हो जाता है कि उसका संसार में आना न आने के बराबर है अर्थात् संसार में जन्म लेकर उसे जो सीखना था, उसे वह न सीख सका। इसलिए उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। भुलावे में पड़कर वह गाफिल हो गया। सांसारिक विषयों के मायाजाल में वह अपनी नैसर्गिक आत्मीय चेतना खो बैठता है और अपनी कुबुद्धि के कारण जीवन की बाजी हार जाता है।

कबीर हरि की भगति बिन, ध्रिग जीवन संसार।
धूँवाँ केरा धौलहर, जातन लागै बार॥125॥

कबीर कहते हैं कि ऐसे जीवन को धिक्कार है, जो मानव जीवन पाकर भी प्रभु की भक्ति नहीं करता। जैसे धुएँ का महल देखने में तो बहुत प्रिय लगता है, किन्तु वह सर्वथा निस्सार होता है, वैसे ही मानव-जीवन चाहे और सब बातों में कितना सुन्दर क्यों न हो, किन्तु प्रभु-भक्ति के बिना सर्वथा सारहीन हैं।

जिहि हरि की चोरी करी, गये राम गुन भूमि।
ते बिधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि॥126॥

जो प्रभु के भजन से जी चुराते हैं और राम के गुणों को भूल जाते हैं, उन्हें ब्रह्मा ने बगुले के रूप में बनाया है, जो कि मछली की खोज में नीचे सिर लटकाये रहते हैं।

माटी मलनि कुँभार की, घनी सहै सिरि लात।
इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अबकी घात॥127॥

जिस प्रकार मिट्टी को आकार ग्रहण में कुम्हार द्वारा रौंदने की क्रिया में अनेक लातें सहनी पड़ती हैं, उसी प्रकार जीव को संसार में रूप ग्रहण करने में काल और कर्मों की अनेक यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। मानव-जीवन ही एक ऐसा अवसर है जब वह अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। यदि वह इस अवसर में नहीं चेतता तो अपना दाँव हमेशा के लिए चूक जाता है और मुक्ति की प्राप्ति कठिन हो जाती है।

इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यों पाली देह।
राम नाम जाना नहीं, अंत परी मुख खेह॥128॥

इस मानव-जीवन रूपी सुन्दर अवसर को पाकर भी यदि तूने परमार्थ के विषय में नहीं सोचा और पशुओं के समान केवल देह को पालने में लगा रहा और राम-नाम के महत्व को नहीं पहचाना तो अन्त में तुझे नष्ट होकर मिट्टी में मिल जाना होगा।

राम नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोरि।
काया हांडी काठ की, ना ऊँ चढ़ै बहोरि॥129॥

मानव शरीर पाकर यदि राम-नाम के महत्त्व को नहीं समझा तो यह जीवन ही दोषपूर्ण हो जायेगा। यह शरीर काठ की हाँड़ी के समान है, जो कि आग पर सिर्फ एक बार ही चढ़ सकती है। अर्थात् एक बार प्राण निकल जाने पर पुनः जीवन का संचार नहीं हो सकता। साधना के लिए फिर शरीर न मिलेगा, इसलिए हे जीव ! इसी जीवन में शरीर रहते ही साधना में प्रवृत्त हो जा।

राम नाम जाना नहीं, बात बिनंठी मूलि।
हरत इहाँ ही हारिया, परति पड़ी मुखि धूलि॥130॥

हे जीव! तूने राम नाम के यश को नहीं जाना तो फिर प्रारम्भ में ही बात बिगड़ गयी। तू इस संसार में धन, यश, कामिनी, कंचन, कादम्बिनी आदि का हरण करता रहा। परन्तु इस हरण करने में तू अपने को ही खो बैठा। तेरा मानव जीवन ही व्यर्थ हो गया और अन्ततः तेरे मुख में धूल की पर्तें जमा हो गईं अर्थात् तू मिट्टी में मिल गया।

राम नाम जाना नहीं, पाल्यो कटक कुटुम्ब।
धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न बंब॥131॥

हे जीव! तूने राम नाम के महत्व को नहीं जाना और अपना सारा जीवन एक सेना के समान बड़े कुटुम्ब के पालने में ही व्यतीत कर दिया। सांसारिक कृत्यों में ही विनष्ट हो गया और तेरा यशोगान, तेरी कीर्ति प्रकाशित न हो सकी।

मानुष जनम दुलभ है, होइ न बारंबार।
पाका फल जो गिरि परा, बहुरि न लागै डार॥132॥

यह मानव जन्म अति दुर्लभ है। मानव शरीर बार-बार नहीं मिलता। एक बार जब फल वृक्ष से गिर पड़ता है, तब वह फल शाखा से पुनः नहीं जुड़ सकता, वैसे ही एक बार मानव शरीर के क्षीण हो जाने पर वह पुनः नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिए इस अवसर को न चूक। इस शरीर के रहते हुए प्रभु-साधना में लग जा।

कबीर हरि की भगति करि, तजि बिषिया रस चौज।
बार बार नहिं पाइए, मनिषा जन्म की मौज॥133॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! मानव जन्म का उल्लासपूर्ण शुभ अवसर बार-बार नहीं मिलता। इसलिए इस जन्म को पाकर विषय-रस के चमत्कार और आस्वाद को छोड़कर तू प्रभू की भक्ति करता रह।

कबीर यहु तन जात है, सकै तो ठौर लगाय।
कै सेवा करि साधु की, कै गोविंद गुन गाय॥134॥

कबीर कहते हैं कि यह मानव शरीर नश्वर है। इसलिए हे जीव! इसके रहते हुए तू इसका सदुपयोग कर ले। तू या तो सन्तों की सेवा कर अथवा गोविन्द के गुणगान से अपने जीवन को सार्थक बना।

कबीर यहु तन जात है, सकै तो लेहु बहोरि।
नांगे हाथौं ते गए, जिनके लाख करोरि॥135॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! यह तेरा मानव शरीर व्यर्थ में नष्ट हो रहा है। यह आकर्षक विषयों, सम्पत्ति के संग्रह आदि में विनष्ट हो रहा है। हो सके तो इसको इन क्षणिक सुखों और प्रलोभनों से बचा ले, क्योंकि सम्पत्ति-संग्रह से कोई लाभ न होगा। जिन्होंने लाखों-करोडों कमाया, वे भी इस संसार से खाली हाथ चले गये।

यह तन काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नाँव बिन, जिद तदि परलै जाइ॥136॥

यह शरीर कच्चे घड़े के समान है। जिस प्रकार कच्चे घड़े को कुम्भकार के अनेक थपेड़े सहन करना पड़ता है, उसी प्रकार मनुष्य को जीवन में अनेक यातनाओं को सहन करना पड़ता है। उसे किसी ओर भी शान्ति के लिए सहारा नहीं मिलता। इसलिए हे जीव! तू राम नाम में अपना ध्यान लगा, क्योंकि तेरे जीवन का कोई ठिकाना नहीं है, वह चाहे जब विनष्ट हो सकता है।

यह तन काचा कुंभ है, लियाँ फिरै था साथि।
ठपका लागा फुटि गया, कछू न आया हाथि॥137॥

यह शरीर, जिसे तू बड़े गर्व के साथ लिये घूम रहा है, कच्चे घड़े के समान है, जो जरा-सा धक्का लगने से फूट जाता है और फिर कुछ भी हाथ नहीं आता। तेरा शरीर भी वैसा ही नश्वर है। इसका कोई ठिकाना नहीं।

काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि।
राम कबीरै रुचि भई, याही ओषदि साधि॥138॥

हे जीव ! तू टालमटोल की प्रवृत्ति का परित्याग कर। तेरी भव-व्याधि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कबीर को राम के प्रति अनुराग हो गया है, जिससे यह उसे तंग नहीं कर पाती। हे जीव! तू भी इसी औषधि का अपने बचाव के लिए प्रयोग कर।

कबीर अपने जीव तैं, ए दोइ बातैं धोइ।
लोभ बड़ाई कारनैं, अछता मूल न खोइ॥139॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! अपने मन से तुम दो बातों को निकाल फेंको-एक तो लोग, दूसरे आत्म-प्रशंसा की तृष्णा। इन दोनों दोषों के कारण अपने पास विद्यमान आत्मा रूपी पूँजी को मत खोओ।

खंभा एक गयंद दोइ, क्यों करि बंधसि बारि।
मानि करै तौ पिउ नहीं, पीव तौ मानि निवारि॥140॥

हे जीव! खम्भा रूपी शरीर एक ही है और अहंभाव और प्रेम रूपी हाथी दो हैं। दोनों को तू एक साथ कैसे बाँध सकेगा? यह कैसे सम्भव है? यदि तू अहंभाव में रहता है तो उसके साथ प्रिय नहीं रह सकते। यदि तू प्रिय अर्थात् प्रभु को रखना चाहता है तो मान को निकालना पड़ेगा।

दीन गँवाया दुनी सौं, दुनी न चाली साथि।
पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपनैं हाथि॥141॥

हे जीव! तुमने सांसारिक मोह में अपना धर्म खो दिया, परन्तु वह संसार जिसके लिए तुमने अपना धर्म खो दिया, तेरे साथ न गयी। तू इतना अचेतन है कि अपने ही हाथों अपने पैर में तूने कुल्हाड़ी मार लिया है अर्थात् अपने मोह से तूने स्वयं अपना जीवन नष्ट कर लिया है।

यह तन तो सब बन भया, करम जु भए कुहारि।
आप आपकौं काटिहैं, कहैं कबीर बिचारि॥142॥

यह शरीर वन के समान है और कर्म कुल्हारी। कबीर विचार कर कहते हैं कि हे जीव! तू अपने ही कर्म रूपी कुल्हाड़ी से अपने जीवन रूपी वन को काट रहा है अर्थात् नष्ट कर रहा है।

कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाइ।
राम निकुल कुल भेंटि, सब कुल रहा समाइ॥143॥

जो केवल, कुटुम्ब, वंश आदि के मोह में पड़ा रहता है, वह वास्तविक कुल अर्थात् पूर्ण, ब्रह्म या भूमा को खो देता है। कुटुम्ब आदि ससीम के मोह में पड़े रहने से पूर्ण या सर्वस्व की प्राप्ति नहीं हो पाती है। राम निकुल हैं उसी

में तू वंश आदि ससीम का समर्पण कर दे। उसी में ससीम समाया हुआ है अर्थात् वह सब में व्याप्त है।

दुनियाँ के धौखे मुवा, चलै जु कुल की कानि।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धरहिं मसांनि॥144॥

हे जीव! तू कुल की गौरव-वृद्धि में पड़ा रहता है। इसी कारण संसारिक भुलावे में मारा जाता है। जब तुझे लोग श्मशान में लिटा देंगे, तब किसका कुल लज्जित होगा ? अर्थात् जिस कुल की मर्यादा-वृद्धि में तू पड़ा रहता है, उससे तेरा सम्बन्ध ही छूट जायगा फिर किसके कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न रह जायगा।

दुनियाँ भाँड़ा दुख का, भरी मुहाँमुह भूष।
अदया अल्लह राम की, कुरलै कौनी कूष॥145॥

यत: संसार तृष्णा से लबालब भरे हुए पात्र स्वरूप है। अत: यह दु:ख का भण्डार है। इसमें पूर्ण तृप्ति के लिए प्रयास करना व्यर्थ है। अल्लाह या राम की दया के बिना यह तृष्णा समाप्त नहीं हो सकती। हे जीव! जब सारा संसार एक अतृप्त वासना का भण्डार है तो ऐसे संसार में किस खजाने के लिए चीखता रहता है?

जिहि जेवरी जग बंधिया, तू जिनि बंधै कबीर।
ह्वैसी आटा लोन ज्यौं, सोना सवां सरीर॥146॥

कबीर कहते हैं कि जिस माया की रज्जु से जगत् बँधा हुआ है, तू उसमें मत फँस। यदि तू उसमें फँसता है तो तेरा यह सोने के समान बहुमूल्य शरीर अर्थात् मानव जीवन का व्यक्तित्त्व वैसे ही हो जायेगा जैसे आटा में नमक मिलाने पर इस प्रकार घुल-मिल जाता है कि उससे पृथक् नहीं किया जा सकता।

कहत सुनत जग जात है, विषय न सूझै काल।
कबीर प्यालै प्रेम के, भरि भरि पिबै रसाल॥147॥

उपदेशों को कहते और सुनते हुए संसार के लोगों का जीवन समाप्त होता जाता है। विषय में पड़े हुए उन्हें काल की सुधि नहीं रहती। किन्तु कबीर जैसे सन्त विषय के प्याले को मुख से नहीं लगाते। वे मधुर, प्रेम से परिपूर्ण प्याले को छक-छककर पीते हैं।

कबीर हद के जीव सौं, हित करि मुखाँ न बोलि।
जे राचे बेहद सौं, तिन सौं अंतर खोलि॥148॥

कबीर कहते हैं कि ससीम में फँसे हुए लोगों की संगत में मत पड़ों। उनसे अधिक प्रेम की वाणी न बोलो, अन्यथा तुम भी उनकी बातों में फँस जाओगे।

जो साधक असीम में अनुरक्त हैं, उन्हीं से तुम अपने हृदय की बात कहो। उन्हीं का संगत करो और उन्हीं की बातों पर चलो।

कबीर केवल राम की, तूँ जिनि छाड़ै ओट।
घन अहरन बिच लोह ज्यौं, घनो सहै सिरि चोट॥149॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू केवल प्रभु का स्मरण कर, केवल उसी को अपना अवलम्ब बना। वही तुझको सब दु:खों मुक्त कर सकता है, अन्यथा जैसे निहाई पर रखा हुआ लोहा हथौड़े की चोट से पीटा जाता है, वैसे ही तुझे सिर पर सांसारिक दु:खों की चोट सहनी पड़ेगी।

कबीर केवल राम कह, सुद्र गरीबी झालि।
कूर बड़ाई बूड़सी, भारी पड़सी कालि॥150॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू अपनी गरीबी को झेलते हुए केवल प्रभु का स्मरण कर। व्यर्थ का बड़प्पन नष्ट हो जायेगा और भविष्य में यह तुझे बहुत मँहगा पड़ेगा। तू उसके बोझ से दब जायेगा।

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोइम धोइ।
ऊजर भए न छूटिए, सुख नींदरी न सोइ॥151॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तूने स्वच्छता के वास्तविक मर्म को नहीं समझा है। तू शरीर और कपड़ों को धोकर स्वच्छता का व्यर्थ आडम्बर करता है। वास्तविक स्वच्छता मन की है। काया और वस्त्र के स्वच्छ होने से नहीं वरन् केवल मन की स्वच्छता से ही मुक्त होगा। इसलिए बाह्य स्वच्छता को वास्तविक स्वच्छता समझकर निश्चिन्त मत रह। सर्वदा आन्तरिक परिष्कार का प्रयास करता रह।

ऊजल कपड़ा पहिरि करि, पान सुपारी खाँहि।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जाँहि॥152॥

कबीर कहते हैं कि लोग प्राय: श्वेत वस्त्र धारण करते हैं और अपने मुख को सुशोभित करने के लिए पान-सुपारी का सेवन करते हैं। किन्तु प्रभु के भजन के बिना इस बाह्य सजावट से काम नहीं चलेगा। केवल हरि-स्मरण से ही मुक्ति होगी।

तेरा संगी कोइ नहीं, सब स्वारथ बँधी लोइ।
मन परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ॥153॥

हे जीव! तेरा कोई परम मित्र नहीं है, सब लोग अपने-अपने स्वार्थ में बँधे हुए हैं। परन्तु तू ऐसा अज्ञानी है कि इस कटु सत्य के प्रति तेरे मन में

प्रतीति नहीं होती और न तेरे हृदय में विश्वास जमता है। कोई भी तेरे साथ न जाएगा।

माँइ बिड़ाणी बाप बिड़, हम भी मंझि बिड़ाँह।
दरिया केरी नाँव ज्यों, सँजोगे मिलि जाँहि।।154।।

जगत् में सारे सम्बन्ध क्षणिक और संयोगजनक हैं। माँ भी पराई है, पित भी पराया है और हम सब भी पराए लोगों के बीच में हैं। इनमें से कोई अपना निजी व्यक्ति नहीं है। संसार में हम लोग उसी प्रकार संयोगवश मिल जाते हैं जैसे भिन्न-भिन्न स्थानों से आई हुई नौकाएँ समुद्र या नदी में अकस्मात् मिल जाती है।

इत पर घर उत घर, बनिजन आए हाट।
करम किरानाँ बेंचि करि, उठि कर चाले बाट 155।।

यह संसार जीव का नैसर्गिक धाम नहीं है। वास्तविक धाम तो केशवधाम है, जहाँ से हम आए हैं। संसार एक बाजार के समान है, जहाँ पर लोग वाणिज्य के लिए आते हैं और अपना कर्म रूपी सौदा बेंचकर अपने-अपने मार्ग पर चले जाते हैं। इसलिए हे जीव! संसार तेरा वास्तविक धाम नहीं है वरन् प्रभु ही तेरा वास्तविक शाश्वत धाम है।

नाँन्हाँ काती चित्त दे, मँहगे मोलि बिकाइ।
गाहक राजा राम हैं, और न नेड़ा आइ।।156।।

हे जीव! तू मन लगाकर बारीक कताई कर, क्योंकि बारीक सूत मँहगे दामों पर बिकता है अर्थात् तू अच्छे कर्म कर। उसका ही बड़ा मूल्य होगा और उसके ग्राहक कोई सांसारिक राजा नहीं, स्वयं प्रभु होंगे। कोई दूसरा तेरे निकट नहीं आएगा। इस माल को कोई दूसरा न खरीद सकेगा।

डागल ऊपरि दौरनां, सुख नींदड़ी न सोइ।
पुन्नैं पाए द्यौहड़े, ओछी ठौर न खोइ।।157।।

हे जीव! यह मानव जीवन पुष्पों की शय्या नहीं अपितु ऊबड़-खाबड़ कंटकाकीर्ण मार्ग पर दौड़ने के समान है। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कठिन साधना करनी पड़ेगी। क्षुद्र सांसारिक सुखों में लिप्त होकर सुख की नींद न सो। अपने शुभ कर्मों और पुण्य के प्रताप से तुझे देवालय के समान यह पवित्र मानव शरीर प्राप्त हुआ है। इसे तुच्छ कार्यों में लगाकर तू नष्ट न कर।

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसो भागि।
कब लग राखौं हे सखी, रुई पलेटी आगि।।158।।

अहं बुद्धि, आपा बहुत बड़ा रोग है। इसलिए तू उससे मुक्त होने का प्रयत्न कर। क्योंकि 'मैं मैं' से लिप्त बुद्धि आग से लिपटी हुई रूई के समान है, जो तेरे सारे जीवन को नष्ट कर देगी।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैखड़ा, मेरी गल की पास॥159॥

हे जीव! अहंभाव और ममत्व पैरों की बेड़ी और गले की फाँसी के समान है। अत: अहंभाव और मेरेपन से दूर रह। अन्यथा यह तेरे जीवन के मूल को ही नष्ट कर डालेगा।

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवनहार।
हलके हलके तिरि गए, बूड़े जिन सिर भार॥160॥

कबीर कहते हैं कि भव-सागर से पार जाने के लिए यह प्राण, मनयुक्त मानव तन एक नाव के समान है। यह ऐसी नाव है, जो कि एक तो जर्जर हो चुकी है अर्थात् इसमें मोह, मद, राग, द्वेष आदि के छिद्र हो गए हैं, दूसरे इसका नाविक वासना और अहंभावयुक्त अज्ञानी मन है, जो कि सर्वथा निकम्मा है। ऐसी नाव से जीवन-यात्रा कैसे पूरी हो सकती है। जिन लोगों ने भक्ति और साधना से अपनी वासना और अहंभाव को त्याग कर अपने को हल्का कर लिया है, वे ही इस भव-सागर को पार कर सकते हैं।

:: मधि ::

कबीर मधि अंग जे को रहै, तो तिरत न लागै बार।
दुइ-दुइ अंग सूँ लाग करि, डूबत है संसार॥161॥

कबीर कहते हैं कि जो मध्य मार्ग का अनुसरण करता है, उसे संसार रूपी भवसागर पार करते देर नहीं लगती। जो द्वन्द्व अर्थात सुख-दु:ख, प्रवृत्ति-निवृत्ति आदि में लिप्त रहता है, वही संसार में डूबता है।

कबीर दुविधा दूरि करि, एक अंग ह्वै लागि।
यहु सीतल वहु तपपि है, दोऊ कहिए आगि॥162॥

कबीर कहते हैं कि संशय को छोड़कर, अतिवादी दृष्टियों को त्यागकर मध्यम वर्ग में लग जाना चाहिए। अत्यधिक शीतलता और अत्यधिक ताप दोनों अग्नि के समान विनाशक होते हैं। इसलिए मध्यम मार्ग ही श्रेष्ठ है।

अनल आकासाँ घर किया, मद्धि निरन्तर बास।
वसुधा व्योम बिरकत रहै, बिना ठौर बिस्वास॥163॥

एक पक्षी अन्तरिक्ष में अपना नीड़ बनाता है और आकाश तथा पृथ्वी भूलोक और स्वलोक के बीच में ही निरन्तर वास करता है। यद्यपि अन्तरिक्ष में कोई प्रत्यक्ष आश्रय नहीं है, तथापि अपने दृढ़ विश्वास से वह वहाँ स्थित रहता है। ठीक इसी प्रकार साधक को द्वन्द्वों से अलग रहकर 'सहज-समरस' अवस्था में स्थित रहना चाहिए।

बासुरि गमि नारैनि गमि, नाँ सुपिनंतर गंम।
कबीर तहाँ विलंबिया, जहाँ छाँह नहिं धंम॥164॥

कबीर कहते हैं कि मैं उस द्वन्द्वातीत अवस्था में स्थित हूँ जहाँ न दिन की पहुँच है, न रात की, जो स्वप्नों में भी नहीं जाना जा सकता और न जहाँ छाया है, न धूप।

जिहि पैंडै पंडित गए, दुनियाँ परी बहीर।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रहा कबीर॥165॥

जिस मार्ग से शास्त्रज्ञानी पंडित और संसार की भीड़ चलती रहती है, कबीर उस मार्ग पर नहीं चले। परमतत्त्व का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। वह दुर्गम, कठिन और सँकरा मार्ग गुरू ने बतलाया और कबीर ने उसी मार्ग का अनुसरण कर परमतत्त्व तक आरोहण किया।

सुरग नरक मैं रहा, सतगुर के परसादि।
चरन कँवल की मौंज मैं, रहौं अंति अरु आदि॥166॥

सत्गुरु की कृपा से मैं स्वर्ग-नरक दोनों से विरत हूँ। ये दोनों भोग के स्थल हैं। इनमें जन्म-मरण का चक्कर लगा रहता है। मैं तो निरन्तर प्रभु के चरण-कमल के आनन्द में मग्न रहता हूँ।

हिन्दू मूये राँम कहि, मूसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ॥167॥

हिन्दू लोग परमतत्त्व के लिए 'राम-राम' रटते हुए और मुसलमान 'खुदा' में सीमित करके विनष्ट हो गये। कबीर कहते हैं कि वास्तव में वही जीवित हैं, जो राम और खुदा में भेद नहीं करता और दोनों में व्याप्त अद्वैत-तत्त्व को ही देखता है। जीवन की सार्थकता इस भेद-बुद्धि से ऊपर उठना है।

दुखिया मूवा दुख कौं, सुखिया सुख कौं झूरि।
सदा अनंदी राँम के, जिनि सुख-दुख मेल्हे दूरि॥168॥

दु:खी व्यक्ति दु:ख के कारण पीड़ित रहता है और सुखी अधिक सुख की खोज में चिन्तित रहता है। कबीर कहते हैं कि राम के भक्त, जिन्होंने दुरूख-सुख के द्वन्द्व को त्याग दिया है, सदा आनन्द में रहते हैं।

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।
राँम सनेही यूँ मिलै, दोनउं बरन गँवाइ॥169॥

कबीर कहते हैं कि हल्दी पीली होती है और चूना श्वेत रंग का होता है। परन्तु जब दोनों एक में मिलते हैं, तब एक नया लाल रंग बन जाता है। इसी प्रकार जब राम और उनके भक्त मिलते हैं, तब न तो भक्त का अहंभाव रह जाता है और न ब्रह्म का निर्गुणत्व। वह भागवत पुरुष हो जाता है।

काबा फिर कासी भया, राँमहि भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम॥170॥

सम्प्रदाय के आग्रहों को छोड़कर मध्यम मार्ग को अपनाने पर काबा काशी हो जाता है और राम रहीम बन जाते हैं। सम्प्रदायों की रूढ़ियाँ समाप्त हो जाती हैं। भेदों का मोटा आटा अभेद का मैदा बन जाता है। हे कबीर! तू इस अभेद रूपी मैदे का भोजन कर, स्थूल भेदों के द्वन्द्व में न पड़।

धरती उरु असमान बिचि, दोइ तूँबड़ा अबध।
षट दरसन संसै पड़ा, अरु चौरासी सिध॥171॥

पृथ्वी और आकाश के बीच में द्वैत-दृष्टि का तुंबा अविनाश्य है। उसका सरलता से विनाश नहीं किया जा सकता। उसी द्वैत के कारण छहों दर्शन और चौरासी सिद्ध संशय में पड़े रहते हैं तथा सत्य का अनुसरण नहीं कर पाते।

:: बेसास ::

जिनि नर हरि जठराहँ, उदिक थैं पिंड प्रकट कीयौं।
सिरे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयौ॥
उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम रखियौ।
अंन पान जहाँ जरै, तहाँ तैं अनल न चखियौ॥
इहि भाँति भयानक उद्र में उद्र न कबहूँ छंछरै।
कृसन कृपाल कबीर कहि, हम प्रतिपाल न क्यों करै॥172॥

जिस प्रभु ने गर्भ में रज-वीर्य से मानव शरीर का निर्माण किया, जिसने उसको कान, हाथ, पैर, जिह्वा, मुख आदि दिया, गर्भ में ऊपर पैर और नीचे सिर की दशा में दस मास तक सुरक्षित रखा। जिस जठराग्नि में भुक्त अन्न, जल आदि जीर्ण हो जाते हैं, वहाँ भी तू उस जठराग्नि से बचा रहा। इस प्रकार माँ

के भयानक पेट में भी तेरा उदर कभी खाली नहीं रहा, तेरा पोषण मिलता रहा। जब उदर में इस परिस्थिति में उदार प्रभु तेरा पोषण करता रहा, कबीर कहते हैं तो वह कृपालु प्रभु अब तेरा प्रतिपालन क्यों र करेगा? अर्थात् हे मनुष्य! तू प्रभु की उदारता पर विश्वास रख। वह तेरी रक्षा करेगा।

भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
भाँड़ा गढ़ि जिन मुख दिया, सोई पुरवन लोग॥173॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! तू 'भूखा-भूखा' की रट क्यों लगाता है? अपनी भूख की कहानी लोगों को क्यों सुनाता है ? जिस कृपालु प्रभु ने तेरे शरीर रूपी घड़े को गढ़कर मुख दिया है, वही उदर-पूर्ति भी करेगा।

रचनाहार कौं चीन्हि लै, खाबे कौं क्या रोइ।
दिल मन्दिर मैं पैसि करि, तांनि पछेवरा सोइ॥174॥

हे जीव! तू अपने स्रष्टा को पहचान। खाने के लिए क्यों रोता है? अपने हृदय रूपी मन्दिर में प्रविष्ट होकर तू प्रत्यग्राम्य को पहचान और विश्वास रूपी चादर ओढ़कर सुख की नींद सो अर्थात् निश्चिन्त हो जा।

राँम नाँम करि बोंहड़ा, बोहौ बीज अघाइ।
खंड ब्रह्माण्ड सूखा परै, तऊ न निष्फल जाइ॥175॥

रामनाम का बीज धारण करो और जी-भरकर अपने जीवन-क्षेत्र में बोओ। चाहे चारों ओर सूखा पड़ जाय, कहीं भी वर्षा न हो अर्थात् चाहे जैसी विकट परिस्थिति क्यों न हो, यह रामनाम का बीज अवश्य उगेगा। वह कभी निष्फल नहीं जा सकता है। रामनाम से संसिद्धि अवश्य प्राप्त होगी।

चिंतामनि चित मैं बसै, सोई चित मैं आंनि।
बिन चिंता चिंता करै, इहै प्रभु की बांनि॥176॥

तेरे अन्तर्मन में सभी वाञ्छित पदार्थों को देनेवाला समर्थ ईश्वरूपी चिंतामणि विद्यमान है। तू उसी में चित्त को लगा। प्रभु का यही स्वभाव है कि वह सबका ध्यान रखते हैं, कोई उनका चिंतन करे या न करे।

कबीर का तूँ चिंतवै, का तेरे चिंते होइ।
अनचिन्ता हरि जी करै, जो तोहि चिंति न होइ॥177॥

कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! तू व्यर्थ की चिंता क्यों करता है? तेरे चिंता करने से होता भी क्या है? तेरे लिए जो आवश्यक है प्रभु बिना तेरे सोचे पूर्ण कर देते हैं, जिससे तुझे चिंता न करनी पड़े। इसलिए प्रभु में पूर्ण आस्था रख।

करम करीमाँ लिखि रहा अब कुछ लिखा न जाइ।
मासा घटै न लि बढ़ै, जौ कोटिक करै उपाय॥178॥

कृपालु प्रभु ने तेरे कर्मों के अनुसार फल का लेखा-जोखा तैयार कर रखा है। अब उसके आगे कुछ भी नहीं लिखा जा सकता। इसमें कुछ भी घट-बढ़ नहीं हो सकती, व्यक्ति चाहे जितना कोशिश क्यों न करे।

जाकौ जेता निरमया, ताकौं तेता होइ।
रत्ती घटै न तिल बढ़ै, जौ सिर कूटै कोई॥179॥

प्रभु ने जीव के लिए जितना भोग रच दिया है उतनी ही उसे मिलता है। इसके अतिरिक्त उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता, कोई चाहे कितना ही सिर क्यों न पिट ले।

चिंता छांड़ि अचिंत रहु, साँई है समरत्थ।
पसु पंखेरू जंतु जिव, तिनकी गाँठी किसा गरत्थ॥180॥

हे जीव ! तू चिंता छोड़कर निश्चिंत रह। प्रभु सामर्थ्यवान है। पशु, पक्षी और अन्य जीव-जन्तुओं को भी उनकी आवश्यकता के अनुसार प्रभु ने सम्पदा एकत्र कर रखी है। जिसने उनके लिए सभी आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति की है, वही तेरे लिए करेगा।

इसंत न बाँधे गाठरी, पेट समाता होइ।
आगैं पाछैं हरि खड़ा, जो माँगै सो देइ॥181॥

संत में संचय की प्रवृत्ति नहीं होती। वह केवल आवश्यकता-भर पदार्थों को ग्रहण करता है अर्थात् उसमें अपरिग्रह की अप्रवृत्ति नहीं होती है। प्रभु सर्वव्यापी है। भक्त को जिस वस्तु की आवश्यकता होती है वह उसकी पूर्ति कर देता है।

राँम नाँम सौं दिल मिला, जम सों परा दुराइ।
मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाइ॥182॥

मेरा हृदय रामनाम से युक्त है। अब यमराज मेरा कुछ नहीं कर सकता। उसके अधिकार से मैं अलग हो गया हूँ। मुझे अपने इष्टदेव का पूरा भरोसा है। उनका भक्त कभी नरक में नहीं जा सकता।

कबीर तूँ काहै डरै, सिर परि हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नहिं डोलिए, कूकुर भुसैं जु लाख॥183॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव! प्रभु का संरक्षण हाथ तेरे ऊपर है, फिर तू क्यों विचलित होता है? जब तू हाथी पर सवार हो गया, तब क्यों भयभीत होता

है? अब तो तू सुरक्षित है। तेरे पीछे चाहे लाख कुत्ते भूँकें, तुझे उनका भय नहीं करना चाहिए।

मीठा खाँड़ मधूकरी, भाँति भाँति कौ नाज।
दावा किसही का नहीं, बिना बिलायत राज॥184॥

भिक्षा से प्राप्त भोजन में भाँति-भाँति का अन्न रहता है। वह खाँड के समान मीठा होता है। उसमें किसी एक व्यक्ति का अधिकार नहीं रहता। भिक्षान्न से सन्तुष्ट ऐसा साधु बिना राज्य के ही राजा है।

माँनि महातम प्रेम रस, गरवातन गुण नेह।
ए सबही अहला गया, जबहिं कहा कछु देह॥185॥

किसी व्यक्ति से किसी वस्तु की याचना करते ही सम्मान, महातम्य, प्रेमभाव, गौरव, गुण और स्नेह आदि सभी का नाश हो जाता है।

माँगन मरन समान है, बिरला बंचौ कोइ।
कहै कबीरा राम सौं, मति रे मँगावै मोहि॥186॥

माँगना मृत्यु के समान दु:खदायी है। ऐसी वृत्ति से शायद ही कोई बच पाता है। प्रत्येक को कुछ-न-कुछ आवश्यकता पड़ती रहती है और उसे माँगना पड़ता है तथापि कबीर राम से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! मैं ऐसी स्थिति में कभी न आऊँ कि मुझे कभी किसी से कुछ माँगना पड़े।

पांडर पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम बास।
राँम नाँम सींचा अँमी, फल लागा विस्वास॥187॥

शरीर कुंद की झाड़ समान है, उसके पुष्प में मनोरथ की अनुपम संगुध है। उस पर मनरूपी भ्रमर मँडराता रहता है। उस झाड़ को साधक रामनाम जपरूपी अमर प्राणदायियी शक्ति से सींचता रहता है। तब उसमें विश्वास के फल प्रफुल्लित होते हैं। यही भक्ति की सार्थकता है।

मेरि मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म बिसास।
अब मेरे दूजा कोइ नहीं, एक तुम्हारी आस॥188॥

अहं और मेरापन का भाव समाप्त हो गया। अब मैं इस सीमा से विरत् हो गया और मेरी ब्रह्म में पूर्ण आस्था हो गयी। हे प्रभु अब मेरे लिए कोई दूसरा नहीं है, केवल तुम्हारा भरोसा है।

जाके हिरदै हरि बसै, सो नर कलपै काँइ।
एकै लहरि समुंद की, दु:ख दालिद सब जाइ॥189॥

जिसके हृदय में प्रभु का निवास है, वह और किसके लिए कल्पित है ? भगवान के अनुग्रहरूपी समुद्र की एक लहर मात्र से उसके सभी दु:ख और दारिद्रय नष्ट हो जाते हैं।

पद गावै लौंलीन ह्वै, कटी न संसै पास।
सबै पछाड़े थोथरे, एक दिना बिस्वास॥190॥

यदि संशय का बंधन नहीं कटा तो सर्वथा प्रभु में लीन होकर पद गाने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। विश्वास-रहित सारी साधना वैसे ही व्यर्थ है जैसे बिना अन्नकण के थोथे तुष (खाली सूप) को पछोरना।

गावन ही मैं रोवना, रोवन ही मैं राग।
इक बैरागी ग्रिह करै, एक ग्रिही बैराग॥191॥

एक दिखावे में गाता है, किन्तु भीतर से रोता है। दूसरा ऊपर से तो रोता हुआ प्रतीत होता है, किन्तु भीतर से गाता है। ठीक इसी प्रकार एक वैरागी होते हुए भी भीतर से आसक्त रहने के कारण गृहस्थी से बँधा है और दूसरा ऊपर से घर-गृहस्थी तो बनाये हुए है, किन्तु भीतर से वह अनासक्त है अर्थात् उसमें सांसारिक विषयों के प्रति वास्तविक वैराग्य है।

गाया तिन पाया नहीं, अनगायाँ तै दूरि।
जिनि गाया विस्वास सौं, तिन राम रहा भरपूरि॥192॥

जिन्होंने बिना विश्वास के प्रभु का गुणगान किया, भक्ति का ढिंढोरा पीटा, वे प्रभु को प्राप्त करने में असमर्थ हैं, जो प्रभु का नाम लेते ही नहीं, उनसे तो वह दूर ही है। जो श्रद्धा और विश्वास के साथ राम-नाम का गुणगान करते हैं, उनके रोम-रोम में प्रभु व्याप्त रहते हैं।

,,

:: सम्प्रथाई ::

ना कछु किया न करि सका, नाँ करने जोग सरीर।
जो कछु किया सो हरि किया (ताथै) भया कबीरकबीर॥193॥

मैंने स्वयं से कुछ भी नहीं किया और न कर सकने की सामर्थ्य है। यह स्थूल शरीर किसी कार्य के योग्य नहीं है। मेरे जीवन में जो कुछ भी संभव हुआ है, वह सब प्रभु ने किया है। उन्हीं की साधना से एक साधारण व्यक्ति श्रेष्ठ कबीर हो गया।

कबीर किया कछु होत नहिं, अनकीया सब होइ।
जौ कीएं ही होत है, तौ करता औरै कोइ॥194॥

कबीर कहते हैं कि मनुष्य ईश्वर के अनुग्रह के बिना कुछ नहीं प्राप्त कर सकता। यदि भगवदनुग्रह प्राप्त हो जाता है तो बिना साधना किये ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यदि साधना, तपस्या आदि से कुछ होता भी है तो उसका वास्तविक कर्त्ता कोई और नहीं प्रभु ही है।

जिसहि न कोइ तिसहि तूँ तिस सब कोइ।
दरगह तेरी साँइयाँ, नाँमहरूँम न होइ॥195॥

जिसका कोई नहीं है, उसका भी आश्रय तू ही है। जिसे तेरा आश्रय प्राप्त है, उसको सभी के आश्रय स्वत: प्राप्त हो जाते हैं। हे प्रभु ! तेरे दरबार में कोई वञ्ज्चित नहीं रहता अर्थात् तेरी कृपा सब को प्राप्त होती है।

एक खड़े ही ना लहैं, और खड़े बिललाइ।
साँई मेर, सुलषनां, सूतां देह जगाइ॥196॥

कुछ दरबार ऐसे होते हैं जहाँ कुछ लोग खड़े रहते हुए भी कुछ पाने से वञ्ज्चित रहते हैं और वहीं खड़े-खड़े बिलखते रहते हैं। परन्तु मेरा प्रभु ऐसा कृपालु है कि वह सोये हुए को भी जगाकर देता है।

सात समुंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरनी सब कागद करौं, (तऊ) हरि गुन लिखा न जाइ॥197॥

यदि सातों समुद्रों की स्याही बना डालूँ, सारे बनराजि की लेखनी और सारी पृथ्वी को कागज के रूप में ग्रहण करूँ तो भी प्रभु के गुणों का वर्णन सम्भव नहीं।

अबरन कौं क्या बरनिये, मोपै बरनि न जाइ।
अबरन बरने बाहिरा, करि करि थका उपाइ॥198॥

जो अवर्णनीय है उसका वर्णन कैसे हो सकता है? मेरे लिए उसका वर्णन सम्भव नहीं है। वह वर्णन से परे है। लोग अनेक कोशिश करके थक गए किन्तु उसका वर्णन करने में असफल ही रहे।

झल बाँवे झल दाँहिनैं, झलहि मांहि व्यौंहार।
आगै पीछै झलमई, राखै सिरजनहार॥199॥

संसार में जीव दाहिने-बाएँ, आगे-पीछे चारों ओर ज्वाला अर्थात त्रिताप (आधिभौतिक-आध्यात्मिक और आधिदैविक) से घिरा हुआ है और उसके सारे व्यवहार इसी ज्वाला के भीतर ही सम्पन्न होते हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रभु ही उसकी रक्षा कर सकते हैं। उसमें स्वयं बचने की सामर्थ्य नहीं है।

साँई मेरा बानियाँ, सहजि करै व्यौपार।
बिन डाँड़ी बिन पालरै, तौले सब संसार।।200।।

मेरा प्रभु अद्‌भुत व्यापारी है। वह सहज रूप में व्यापार करता है अर्थात् संसार के प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्म के अनुसार फल देता है। उसके न्याय का तराजू ऐसा है जिसमें डाँड़ी और पलड़े के बिना व्यक्ति के भाग का निर्धारण उसके कर्म के अनुसार करता है।

कबीर वार्या नाँव पर, कीया राई लौनं।
जिसहि चलावै पंथ तूँ, तिसहि भुलावै कौंन।।201।।

कबीर कहते हैं कि मैंने प्रभु के नाम पर अपने को पूर्णरूपेण समर्पित कर दिया है। जिसे भगवान सन्मार्ग पर लगा देता है, उसे भ्रमित कौन कर सकता है?

कबीर करनी क्या करै, जे राँम न करै सहाइ।
जिहि जिहि डाली पग धरै, सोई नइ नइ जाइ।।202।।

कबीर कहते हैं कि यदि मनुष्य को भगवान की सहायता न मिले तो वह अपने उपाय से क्या कर सकता है? प्रभु की सहायता के बिना साधक जिस डाल का आश्रय लेकर ऊपर चढ़ना चाहता है अर्थात् साधना में जिस मार्ग का अवलम्ब लेकर आगे बढ़ना चाहता है, वही डाल नीचे झुक जाती है और साधक के नीचे गिर जाने की आशंका उत्पन्न हो जाती है।

जदि का माइ जनमियाँ, काहू न पाया सुख।
डाली डाली मैं फिरौं, पातौं पातौं दुःख।।203।।

मुझे जब से माता ने जन्म दिया, मैंने कहीं सुख नहीं पाया। यदि मैं डाल-डाल पर रहता हूँ तो दुःख आगे पात-पात पर रहता है अर्थात् मैं जितना ही दुःख से बचने का उपाय करता हूँ, उतना ही दुःख प्रत्यक्ष दिखायी देता है। केवल प्रभु की शरण में ही सुख है।

साँई सौं सब होत है, बंदे ते कछु नाँहि।
राई ते परबत करै, परबत राई माँहि।।204।।

जीवन में जो भी कार्य हैं वह प्रभु की कृपा से ही पूर्ण होता है, सेवक के प्रयत्न से नहीं हो सकता। प्रभु ऐसी शक्ति है कि वह राई को पर्वत और पर्वत को राई में बदल सकता है अर्थात् क्षुद्र को महान् और महान् को क्षुद्र बना सकता है।

:: सबद ::

अनी सुहेली सेल की, पड़तां लेइ उसास।
चोट सहारै सबद की, तास गुरू में दास।।205।।

भाले की नोंक की चोट तो सही जा सकता है। भाला लगने पर मनुष्य एक बार व्यथा की श्वास तो निकाल भी सकता है, किन्तु दुर्वचन की चोट असह्य होती है। उसे सहन करने की क्षमता जिसमें होती है, कबीर उसे अपना गुरू मानने को तैयार हैं। अर्थात कटु वचन सहनेवाले व्यक्ति संसार में विरले ही मिलते हैं।

खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराइ।
कुटिल बचन साधू सहै, दूजै सहा न जाइ॥206॥

सहन करने की क्षमता केवल महान् लोगों में होती है। विशाल धरती में ही यह क्षमता होती है कि वह खोदाई के कष्ट को झेले, सुविस्तृत वनराजि में ही यह क्षमता है कि वह काट-कूट को सहन कर सके। इसी प्रकार विशाल हृदयमयी प्रभु-भक्त में ही यह क्षमता व्याप्त होती है कि वह लोगों के दुर्वचन वचन सहता है। अन्य लोगों में यह सहन शक्ति नहीं होती।

सीतलता तब जानिए, समता रहै समाइ।
पख छाड़ै निरपख रहै, सबद न दूखा जाइ॥207॥

मनुष्य में वास्तविक शीतलता का गुण तब समझना चाहिए, जब उसमें समत्व का भाव आ जाय, मान-अपमान की भावना से विवर्जित हो जाय और जब वह पक्ष छोड़कर सर्वथा निष्पक्ष हो जाय। तब दुर्वचन उसे दु:खित नहीं कर सकते।

कबीर सीतलता भई, पाया ब्रह्म गियान।
जिहि बैसंदर जग जलै, सो मेरे उदक समान॥208॥

जब मेरे भीतर ब्रह्म-ज्ञान जगा तो समत्वजनित शीतलता व्याप्त हो गयी। जिस दुर्वचनरूपी अग्नि से सारा संसार जल रहा है, वह मेरे लिए जल के समान शीतल हो गया।

:: सबद ::

कबीर सबद सरीर मैं, बिन गुन बाजै तांति।
बाहर भीतर रमि रहा, तातैं छूटि भरांति॥209॥

कबीर कहते हैं कि मेरे भीतर अनाहत नाद बिना तारों के वाद्ययन्त्र की ध्वनि के समान गूँज रहा है। वह भीतर-बाहर चारों ओर रम रहा है। फलस्वरूप मेरा चित्त शब्द-ब्रह्म में लीन हो गया है और इससे मेरी सारी भ्रान्तियाँ जाती रही हैं।

सती संतोषी सावधान, सबदभेद सुबिचार।
सतगुर के परसाद तैं, सहज शील मत सार॥210॥

जो साधक सत्यनिष्ठ है, सहनशील है और अवधानपूर्वक सभी ध्वनियों के रहस्य पर भली-भाँति विचार करता है, वह सत्गुरू की कृपा से उस सहज अवस्था को प्राप्त करता है, जो सब मतों का सार है।

सतगुरू ऐसा चाहिए, जस सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह दर्पन, करै सोइ॥211॥

सत्गुरु को सिकलीगर अर्थात् सान धरानेवाले के समान होना चाहिए, जो शब्द के मसकले द्वारा शिष्य को दर्पण के सदृश निर्मल कर देता है। अर्थात् गुरू ऐसा हो जो सुरति-शब्द-योग की साधना द्वारा शिष्य के सब दूषित संस्कारों को अप्रसारित कर उसका अन्त:करण बिल्कुल निर्मल कर दे।

हरि रस जे जन बेधिया, सर गुण सींगणि नाँहि।
लागी चोट सरीर मैं, करक कलेजे माँहि॥212॥

सत्गुरू अपने शब्द को बड़े ही आश्चर्य ढंग से संचालित करता है। वह न तो शर अर्थात् बाण का प्रयोग करता है और गुण अर्थात् प्रत्यंचा तथा सींगणि अर्थात् धनुष का। फिर भी उसके द्वारा प्रवाहित भक्ति-रस से जो बिद्ध होते हैं, उन पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है। उस शब्द की चोट तो लगती है शरीर में, किन्तु वह उसकी टीस हृदय तक प्रवेश कर जाती है।

ज्यों ज्यों हरि गुन साँभलूँ, त्यों त्यों लागै तीर।
साँठी साँठी झड़ि पड़ी, भलका रहा सरीर॥213॥

मैं ज्यों-ज्यों प्रभु के गुणों का स्मरण करता हूँ, त्यों-त्यों वियोग का बाण मेरे अन्तस्तम में प्रविष्ट होता जाता है और वह बाण ऐसे भयंकर रूप में लगता है कि उसका सरकंडा तो टूटकर अलग हो जाता है, किन्तु उसका फलक भीतर ही बिंधा रह जाता है। इसलिए उसको निकालना असंभव हो जाता है।

ज्यौं ज्यौं हरि गुण साँभलौं, त्यौं त्यौं लागै तीर।
लागे ते भागै नहीं, साहनहार कबीर॥214॥

मैं जितना ही प्रभु के गुण का स्मरण करता हूँ, उतना ही मिलन की उत्कण्ठा तीव्र होती जाती है और विरह की वेदना तीर के समान चोट करती है। किन्तु कबीर उस वेदना से भागनेवाला नहीं है। वह धैर्य से उसको सहन करता है।

सारा बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और।
लागी चोट जु सबद की, रहा कबीरा ठौर।।215।।

प्राय: सारे लोग जोर-जोर से पुकारते हैं, किन्तु उनकी पुकार बनावटी होती है। वास्तविक वेदना की पुकार कुछ और ही होती है। गुरु के शब्द की चोट लगने पर कबीर जहाँ-का-तहाँ रह गया। उसमें पुकारने की भी शक्ति शेष न रह गयी।

कबीर की साखी-1

पद कबीर की साखी 25, 2011

:: गुरुदेव ::

,,,,,,,,,,,,,,,,,

सतगुरु सवाँ न को सगा, सोधी सई न दाति।
हरिजी सवाँ न को हितू, हरिजन सई न जाति।।1।।

सद्गुरु के समान कोई सगा नहीं है। शुद्धि के समान कोई दान नहीं है। इस शुद्धि के समान दूसरा कोई दान नहीं हो सकता। हरि के समान कोई हितकारी नहीं है, हरि सेवक के समान कोई जाति नहीं है।

बलिहारी गुरु आपकी, घरी घरी सौ बार।
मानुष तैं देवता किया, करत न लागी बार।।2।।

मैं अपने गुरु पर प्रत्येक क्षण सैकड़ों बार न्यौछावर जाता हूँ जिसने मुझको बिना विलम्ब के मनुष्य से देवता कर दिया।

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार।।3।।

सद्गुरु की महिमा अनन्त है। उसका उपकार भी अनन्त है। उसने मेरी अनन्त दृष्टि खोल दी जिससे मुझे उस अनन्त प्रभु का दर्शन प्राप्त हो गया।

राम नाम कै पटंतरे, देबे कौं कुछ नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माँहि।।4।।

गुरु ने मुझे राम नाम का ऐसा दान दिया है कि मैं उसकी तुलना में कोई भी दक्षिणा देने में असमर्थ हूँ।

सतगुरु कै सदकै करूँ, दिल अपनीं का साँच।
कलिजुग हम सौं लड़ि पड़ा, मुहकम मेरा बाँच।।5।।

सद्गुरु के प्रति सच्चा समर्पण करने के बाद कलियुग के विकार मुझे विचलित न कर सके और मैंने कलियुग पर विजय प्राप्त कर ली।

सतगुरु शब्द कमान ले, बाहन लागे तीर।
एक जु बाहा प्रीति सों, भीतर बिंधा शरीर।।6।।

मेरे शरीर के अन्दर (अन्तरात्मा में) सद्गुरु के प्रेमपूर्ण वचन बाण की भाँति प्रवेश कर चुके हैं जिससे मुझे आत्म-ज्ञान प्राप्त हो गया है।

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही भैं मिलि गया, पड्या कलेजै छेक।।7।।

सद्गुरु सच्चे वीर हैं। उन्होंने अपने शब्दबाण द्वारा मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव डाला है।

पीछैं लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि।।8।।

मैं अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकता हुआ लोक और वेदों में सत्य खोज रहा था। मुझे भटकते देखकर मेरे सद्गुरु ने मेरे हाथ में ज्ञानरूपी दीपक दे दिया जिससे मैं सहज ही सत्य को देखने में समर्थ हो गया।

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना, बहुरि न आँवौं हट्ट।।9।।

कबीर दास जी कहते हैं कि अब मुझे पुनः इस जन्म-मरणरूपी संसार के बाजार में आने की आवश्यक्ता नहीं है क्योंकि मुझे सद्गुरु से ज्ञान प्राप्त हो चुका है।

ग्यान प्रकासा गुरु मिला, सों जिनि बीसरिं जाइ।
जब गोविंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आई।।10।।

गुरु द्वारा प्रदत्त सच्चे ज्ञान को मैं भूल न जाऊँ ऐसा प्रयास मुझे करना है क्योंकि ईश्वर की कृपा से ही सच्चे गुरु मिलते हैं।

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लौंन।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौंन।।11।।

कबीर कहते हैं कि मैं और मेरे गुरु आटे और नमक की तरह मिलकर एक हो गये हैं। अब मेरे लिये जाति-पाति और नाम का कोई महत्व नहीं रह गया है।

जाका गुरु भी अँधला, चेला खरा निरंध।
अंधहि अंधा ठेलिया, दोनों कूप पडंत।।12।।

अज्ञानी गुरु का शिष्य भी अज्ञानी ही होगा। ऐसी स्थिति में दोनों ही नष्ट होंगे।

नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्याडाव।
दोनौं बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव॥13॥

साधना की सफलता के लिए ज्ञानी गुरु तथा निष्ठावान साधक का संयोग आवश्यक है। ऐसा संयोग न होने पर दोनों की ही दुर्गति होती है। जैसे कोई पत्थर की नाव पर चढ़ कर नदी पार करना चाहे।

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा माँहि।
तिहि घर किसकौ चाँन्दना, जिहि घर गोविंद नाँहि॥14॥

ईश्वर भक्ति के बिना केवल कलाओं और विद्याओं की निपुणता मात्र से मनुष्य का कल्याण सम्भव नहीं है।

भली भई जु गुर मिल्या, नातर होती हानि।
दीपक जोति पतंग ज्यूँ, पड़ता आप निदान॥15॥

कबीर दास जी कहते हैं कि सौभाग्यवश मुझे गुरू मिल गया अन्यथा मेरा जीवन व्यर्थ ही जाता तथा मैं सांसारिक आकर्षणों में पड़कर नष्ट हो जाता।

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं पडंत।
कहै कबीर गुर ग्यान तैं, एक आध उबरंत॥16॥

माया का आकर्षण इतना प्रबल है कि कोई विरला ही गुरु कृपा से इससे बच पाता है।

संसै खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खद्ध।
जे बेधे गुरु अष्षिरां, तिनि संसा चुनिचुनि खद्ध॥17॥

अधिकांश मनुष्य संशय से ग्रस्त रहते हैं। किन्तु गुरु उपदेश से संशय का नाश संभव है।

सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोल।
पांसि विनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल॥18॥

सद्गुरु मिलने पर भी यह आवश्यक है कि साधना द्वारा मन को निर्मल किया जाय अन्यथा गुरु मिलन का संयोग भी व्यर्थ चला जाता है।

बूड़ा था पै ऊबरा, गुरु की लहरि चमंकि।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि॥19॥

कबीर दास जी कहते हैं कि कर्मकाण्ड रूपी नाव से भवसागर पार करना कठिन था। अत: मैंने कर्मकाण्ड छोड़कर गुरु द्वारा बताये गये मार्ग से आसानी से सिद्धि प्राप्त कर ली।

गुरु गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार।।20।।

गुरु और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। जो साधक अहंता का भाव त्याग देता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

कबीर सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी सीख।
स्वाँग जती का पहिरि करि, घरि घरि माँगे भीख।।21।।

सद्गुरु के मार्गदर्शन के अभाव में साधना अधूरी रह जाती है और ऐसे लोग संन्यासी का वेश बनाकर केवल भिक्षा मांगते रहते हैं।

सतगुर साँचा, सूरिवाँ, तातैं लोहि लुहार।
कसनी दे कंचन किया, ताई लिया ततसार।।22।।

इस साखी में कबीर दास जी ने सद्गुरु के लिए सोनार और लोहार का दृष्टान्त दिया है। सोनार की भाँति गुरु शिष्य को साधना की कसौटी पर परखता है फिर लोहार की भाँति तपाकर शिष्य के मन को सही आकार देता है।

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर।
निपजी मैं साझी घना, बाँटे नहीं कबीर।।23।।

कबीर दास जी कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा से आत्मज्ञान का आनन्द मुझे मिला है, किन्तु चाह कर भी मैं इस आनन्द को दूसरों के साथ बाँट नहीं सकता क्योंकि आत्मानुभूति के लिए व्यक्ति को स्वयं साधना करनी पड़ती है।

सतगुर हम सूँ रीझि करि, कहा एक परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग।।24।।

सद्गुरु ने प्रसन्न होकर हमसे एक रहस्य की बात बतलायी, जिससे प्रेम का बादल इस प्रकार बरसा कि हम उसमें भीग गये।

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरस्या आइ।
अंतरि भीगी आतमाँ, हरी भई बनराई।।25।।

कबीर कहते हैं कि सद्गुरु के बताये हुए मार्ग से प्रेम का बादल उमड़कर हमारे ऊपर बरसने लगा। हमारी अन्तरात्मा भीग गयी और जीवनरूपी वनराशि हरी हो गयी।

:: सुमिरन ::

कबीर कहता जात है, सुनता है सब कोइ।
राम कहें भल होइगा, नहिं तर भला न होइ।।26।।

कबीरदास कहते हैं कि मैं कहता जाता हूँ अर्थात् बराबर कहता रहा हूँ और सभी मेरी बात सुनते भी हैं, किन्तु मेरे उपदेश के अनुरूप कोई आचरण नहीं करता। मेरा कहना यही है कि प्रभु के स्मरण से ही कल्याण होगा और किसी प्रकार से कल्याण नहीं हो सकता।

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गये ब्रह्म महेस।
राम नाम ततसार है, सब काहू उपदेस।।27।।

कबीर कहते हैं कि ब्रह्मा और शिव ने सारे संसार को एक मुख्य उपदेश दिया है और मैं भी वही कहता हूँ कि राम-नाम ही वास्तव में सार वस्तु है।

तत्त तिलक तिहुँ लोक मैं, रामनाम निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार।।28।।

तीनों लोकों में श्रेष्ठ तत्त्व रामनाम है और वही अपना भी सार है। भक्त कबीर ने अपने मस्तक पर उसको धारण कर लिया और इससे उनके जीवन में अपार शोभा आ गयी।

भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार।।29।।

प्रभु की भक्ति और उनके नाम का भजन (जप) यही वस्तुतः सार है और सब बातें अपार दुःख हैं। कबीर का यह कहना है कि मन, वचन और कर्म से प्रभु का स्मरण ही जीवन का सार है।

चिंता तौ हरि नाँव की, और न चितवै दास।
जे कछु चितवैं राम बिन, सोइ काल की पास।।30।।

दास कबीर कहते हैं कि मैं तो केवल हरि नाम का चिन्तन करता हूँ और किसी वस्तु का चिन्तन नहीं करता। जो लोग राम को छोड़कर और कुछ चिन्तन करते हैं, वे बन्धन और मृत्यु में फँसते हैं।

मेरा मन सुमिरै राम को, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रहा, सीस नवावौं काहि।।31।।

मेरा मन राम का स्मरण करते-करते राममय हो गया। ऐसी स्थिति में अब मैं किसको नमस्कार करूँ?

तूँ तूँ करता तू भया, मुझ मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ।।32।।

मुझमें अहंभाव समाप्त हो गया। मैं पूर्ण रूप से तेरे ऊपर न्यौछावर हो गया हूँ और अब जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू दिखलाई देता है अर्थात् सारा जगत् ब्रह्ममय हो गया है।

कबीर निरभै राम जपु, जब लगि दीवै बाति।
तेल धटै बाती बुझै, (तब) सोवैगा दिन राति।।33।।

कबीर कहते हैं कि जब एक शरीर रूपी दीपक में प्राण रूपी वर्तिका विद्यमान है अर्थात् जब तक जीवन है, तब तक निर्भय होकर राम नाम का स्मरण करो। जब तेल घटने पर बत्ती बुझ जायेगी अर्थात शक्ति क्षीण होने पर जब जीवन समाप्त हो जायेगा तब तो तू दिन-रात सोयेगा ही अर्थात मृत हो जाने पर जब तेरा शरीर निश्चेतन हो जायेगा, तब तू क्या स्मरण करेगा ?

कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि।
इक दिन सोवन होइगा, लम्बे पाँव पसारि।।34।।

कबीर जीव को चेतावनी देते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोते हुए क्या कर रहा है? जग कर अर्थात् इस निद्रा को त्याग कर भगवान का स्मरण कर। एक दिन तो तुझे पैर फैलाकर चिर निन्द्रा में मग्न होना ही है।

कबीर सूता क्या करै, गुन गोविंद के गाई।
तेरे सिर पर जम खड़ा, खरच कदे का खाई।।35।।

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू अज्ञान-निद्रा में सोया हुआ क्या कर रहा है? तू प्रभु का गुणगान क्यों नहीं करता है? तेरे सिर पर यमराज खड़ा है। तू भी काल-ग्रस्त हो जाएगा, बचेगा नहीं। इसलिए जीवन रहते हुए सचेत होकर भगवान का स्मरण कर।

केसौ कहि कहि कूकिए, नाँ सोइय असरार।
राति दिवस कै कूकनै, कबहुँक लगे पुकार।।36।।

प्रभु को निरन्तर आर्त्र स्वर से पुकारते रहो। घोर निद्रा में न पड़े रहो। दिन-रात की पुकार से, सम्भव है, कभी सुनवाई हो जाय और तुम्हारी पुकार लग जाये।

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहिं राम।
ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम।।37।।

जिनके हृदय में न प्रेम है, न प्रेम का आस्वाद और जिनकी जिह्वा पर राम नाम भी नहीं है, वे मनुष्य इस संसार में व्यर्थ पैदा होकर नष्ट होते हैं।

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।
सूने घर का पाहुनाँ ज्यूँ आया त्यूँ जाव।।38।।

कबीर कहते है कि जिसने प्रभु के प्रेम का अनुभव नहीं किया उसका इस संसार में जन्म लेना और मर जाना सूने घर में अतिथि के आने-जाने के समान है।

पहिलै बुरा कमाई करि, बाँधी विष की पोट।
कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की ओट॥39॥

पहले अर्थात् पूर्व जन्म में अनेक पाप-कर्म करके जीव ने जो विष की गठरी बाँध रखी है, प्रभु की शरण में जाने पर वह उसको क्षण भर में फेंक कर शुद्ध हो जाता है।

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।
अनेक जुग जो पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ॥40॥

यदि प्रभु का तनिक भी नाम-स्मरण किया जाये तो वह पूर्व जन्म के करोड़ों दुष्कर्मों को क्षण भर में ढकेल कर नष्ट कर सकता है। किन्तु-भक्ति के बिना मनुष्य चाहे अनेक युगों तक पुण्य करे, उसको कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिल सकता है।

जिहि हरि जैसा जानियां, तिनकौ तैसा लाभ।
ओसों प्यास न भाजई, जब लगि धसै न आभ॥41॥

प्रभु को जिसने जिस प्रकार पहचाना है, उसी प्रकार उसको लाभ प्राप्त होता है। जब तक प्यासा पानी में डुबकी नहीं लगाता, तब तक केवल ओस चाटने से प्यास नहीं जाती।

राम पियारा छांडि करि, करै आन का जाप।
वेस्या केरा पूत ज्यौं, कहै कौन सौं बाप॥42॥

जो परम मित्र परमात्मा राम को छोड़कर अन्य देव-देवी का जप करता है, वह वेश्या के पुत्र के समान है, जो अपने वास्तविक पिता को नहीं जानता। वस्तुतः परमात्मा ही सबका पिता है, अन्य कोई नहीं।

कबीर आपन राम कहि, औरन राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न ऊचरै, तिहि मुख फेरि कहाइ॥43॥

कबीर कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं राम का जप करना ही चाहिए, उसे औरों से भी 'राम' कहलवाना चाहिए। जो व्यक्ति राम नाम का उच्चारण नहीं करता है, उससे बार-बार कहलाना चाहिये।

जैसे माया मन रमैं, यौं जे राम रमाइ।
(तौ) तारा मंडल बेधि कै, जहाँ के सो तहँ जाइ॥44॥

जिस प्रकार जीव का मन माया में रमण करता है, उसी प्रकार यदि उसका मन राम में रमण करे तो वह ब्रह्म में लीन हो सकता है।

लूटि सकै तौ लूटि लै, राम नाम की लूटि।
फिर पाछे पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि।।45।।

मानव शरीर ही एक ऐसी योनि है जिसमें साधना सम्भव है। जब यह शरीर छूट जाएगा तो यह आध्यात्मिक साधना संभव न हो सकेगी और तब पछताओगे कि एक ईश्वर प्रदत्त अवसर को गँवा दिया।

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम भंडार।
काल कंठ तैं गहेगा, रूँधै दसों दुवार।।46।।

राम नाम का अक्षय भण्डार यथाशक्ति लूट लो। जब काल तुम्हारे कंठ को दबोचेगा, तब शरीर के दसों द्वार अवरुद्ध हो जायेंगे। उस समय तुम चेतना-शून्य को जाओगे और राम नाम का स्मरण कैसे कर सकोगे ?

लंबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यों पाइए, दुर्लभ हरि दीदार।।47।।

पथिक का घर बहुत दूर है और मार्ग कवेल लम्बा ही नहीं, दुस्तर भी है। मार्ग में बहुत से बटमार भी मिलते हैं। ऐसी स्थिति में अपने निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचना अत्यन्त दुर्लभ है। इसी प्रकार प्रभु की प्राप्ति अपना लक्ष्य है। इसलिए चेत जाओ और गुरू की सहायता से मार्ग से विहनों से बचते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करो।

गुन गाए, गुन ना कटै, रटै न, राम बियोग।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यों पावै दुर्लभ जोग।।48।।

प्रभु का केवल गुणगान करने से कि वह सर्वव्यापी हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और कीर्तन-भजन करने से प्रकृति का त्रिगुणात्मक बन्धन नहीं कट सकता। यदि भक्त हृदय से उसका स्मरण न करता रहे तो प्रभु से वियोग बना रहता है।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरताँ हरि नाम।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरै त नाहीं ठाम।।49।।

कबीर कहते हैं कि प्रभु के भक्ति-मार्ग में बड़ी कठिनाई है। यह कठिनाई उसी प्रकार की है जेसै सूली के ऊपर नट द्वारा दिखलायी जाने वाली कला, जिसमें हमेशा यह भयावह स्थिति बनी रहती है कि यदि वह गिरा तो उसके बचने का कोई सहारा नहीं है।

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत।।50।।

कबीर कहते हैं कि जिह्वा से तो राम का मन्त्र जपते रहो और मन से उनका ध्यान करते रहो। मन्त्र जपना प्राण की क्रिया है, ध्यान मन की क्रिया। अत: प्रभु तो सागर के समान हैं इसलिये छिछले तालाब रूपी देव-देवियों के चक्कर में पड़कर महासागर के समान प्रभु को मत भुला दो।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यों जोड़ि मन, संधिहि संधि मिलाइ॥51॥

कबीर कहते हैं कि हे जीव ! तू उस अमर तत्त्व का गुणगान कर, जो अमृत के समान औरों को भी अमर कर देता है। अपने चित्त को प्रभु में उसी प्रकार मिला दे, जैसे जौहरी फूटे हुए नग को संधि से संधि कर अर्थात् आपस में मिलाकर जोड़ देता है।

कबीर चित्त चमंकिया, चहुँ दिस लागी लाइ।
हरि सुमिरन हाथौं घड़ा बेगे लेहु बुझाइ॥52॥

कबीर कहते हैं कि इस संसार में सर्वत्र विषय वासना रूपी आग लगी हुई है। उसके ताप से तेरा चित्त तप्त हो उठा है। परन्तु हे भक्त! तू घबड़ा मत। प्रभु के स्मरण-रूपी पावन जल से भरा हुआ घट तेरे हाथ में है अर्थात् तू प्रभु का स्मरण करने की स्थिति में है। उस घड़े से तू विषय-वासना रूपी आग को शीघ्र ही अधीन कर ले अर्थात् बुझा ले।

:: ग्यान बिरह ::

दीपक पावक आँनिया, तेल भि आना संग।
तीन्यँ मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं पतंग॥53॥

ज्योंति के लिए तीन तत्त्वों की आवश्यकता होती है-दीपक, आग और तेल। इसी प्रकार जीव में ज्ञान रूपी ज्योति तभी आ सकती है, जब गुरू जीव रूपी दीपक में ज्ञान रूपी अग्नि और प्रेम अथवा भक्ति रूपी तेल एकत्र कर तीनों को योजित कर दे। ऐसा होने पर फिर तो विषय-वासना रूपी पतिंगे स्वत: आ-आकर जल मरते हैं।

मारा है जे मरैगा, बिन सर थोथी भालि।
पड़ा पुकारै ब्रिछ तरि, आजि मरै कै काल्हि॥54॥

यदि गुरु ने केवल ज्ञान-विहीन बिरह का बाण मारा है, तब भी शिष्य मरेगा अर्थात् अपना या अहंभाव खोयेगा अवश्य। ठीक इसी प्रकार जिसमें केवल रागात्मक बिरह है, वह भी अहंभाव खोएगा, किन्तु बहुत समय के बाद। जिसको ज्ञान संयुक्त बिरह का बाण लगा है, वह शीघ्र ही अहंभाव खो देगा।

झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसनि रही विभूति।।55।।

ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, उसमें योगी के सारे संचित कर्मों की झोली जल गयी और क्रियमाण कर्म रूपी भिक्षापात्र भी टूट-फूट गया अर्थात् अब उसका भी योगी पर कोई प्रभाव न रहा। उसके भीतर जो तत्त्व साधना कर रहा था, वह ब्रह्म में विलुप्त हो गया। अब आसन पर केवल भस्म रह गया अर्थात् साधक अपने पूर्व रूप में न रह कर अवशेष मात्र प्रतीक रूप में कहने-सुनने को रह गया।

आगि जु लागी नीर महिं, कांदौ जरिया झारि।
उतर दखिन के पंडिता, मुए बिचारि बिचारि।।56।।

पानी में आग लग गयी और उसका कीचड़ सम्पूर्णतया जल गया अर्थात अवचेतन में जो दूषित संस्कार और वासनाएँ हैं वे भस्म हो गईं। उत्तर-दक्षिण के पंडित (पोथी तक सीमित ज्ञान वाले पंडित) अर्थात् चारों ओर के शास्त्री विचार कर हार गये पर इसका मर्म किसी की समझ में न आया।

दौं लागी सायर जला पंखी बैठे आई।
दाधी देह न पालवै, सद्गुरु गया लगाइ।।57।।

ज्ञान-विरह की अग्नि से मानस-सरोवर जल गया। अब हंस रूपी शुद्ध जीव ऊपर स्थित हो गया अर्थात् वासनाओं और पृथक् वैयक्तिक सत्ता से विमुक्त हो गया। पृथक् वैयक्तिक सत्ता रूपी देह भस्म हो गयी। अब वह पुनः नहीं पनप सकती अर्थात् स्वयं का अहंभाव सदा के लिए जाता रहा। अब वह पुनः पल्लवित न हो सकेगा।

गुरु दाधा चेला जला, बिहरा लागी आगि।
तिनका बपुरा ऊबरा, गलि पूरे के लागि।।58।।

गुरु ने बिरह की आग लगायी। उस आग में चेला जल गया अर्थात् उसके भीतर पूर्ण रूप से विरह की आग व्याप्त हो गई। सामान्यतया आग लगने से तिनका जलकर राख हो जाता है। परन्तु विरह की आग ऐसी होती है जिससे बेचारे क्षुद्र चेले रूपी तिनके का उद्धार ही हो जाता है, क्योंकि उस बिरह से तृण का भस्म से और चेले का पूर्ण से आलिंगन हो जाता है।

अहेड़ी दौ लाइया मिरग पुकारे रोइ।
जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोइ।।59।।

गुरु रूपी शिकारी शिष्य के मनरूपी देहात्मक वन में ज्ञान-विरह की आग लगती है और वह वासनासक्त जीव रूपी मृग चिल्ला-चिल्लाकर रोता है कि जिस विषय-वासना रूपी वन में भोग कर रहे थे, वह अब जल रहा है, नष्ट हुआ जा रहा है। अर्थात् मृग और आसक्ति-मुक्त जीवन में केवल भेद यह है कि मृग को वन का मोह बना रहता है, परन्तु आसक्ति-मुक्त जीव को क्षण भर के लिए धक्का-सा तो लगता है, परन्तु बाद में उसे मधुर शांति का अनुभव होता है।

पांनीं मांहीं परजली, भई अपरबल आगि।
बहती सरिता रहि गई, मच्छ रहे जल त्यागि॥60॥

जब गुरु ने ज्ञान-विरह की अग्नि प्रज्ज्वलित की तो प्रबल ज्वाला उठी और विषयासक्त जीव प्रज्ज्वलित हो गया। इन्द्रियों का कार्य समाप्त हो गया और जीवात्मा रूपी मत्स्य ने विषय-वासनामयी जल को त्याग दिया।

:: परचा (परिचय) ::

कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सेनि।
पति संगि जागी सुन्दरी, कौतुक वीठा तेनि॥61॥

कबीर कहते हैं कि परमात्मा की ज्योति इतनी शक्तिशाली है मानों सूर्य की श्रेणी उदय हुई हो। परन्तु इस ज्योति रूपी ज्ञान का अनुभव सबको नहीं होता। जो व्यक्ति मोह-निद्रा में सोता नहीं रहता, परमात्मा के साथ जागता रहता है, उन्हीं के द्वारा यह रहस्य देखा जाता है।

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कौ सोभा नहीं, देखे ही परमान॥62॥

परब्रह्म के प्रकाश का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अनुमान, प्रत्यक्ष, उपमान आदि साधन तो मायिक जगत् के हैं। उसका साक्षात्कार इन किसी भी साधनों के क्षेत्र में नहीं है। उसका सौन्दर्य व्याख्यान से परे है। उसका प्रमाण केवल अपरोक्षानुभूति ही है।

हदे छाँड़ि बेहदि गया, हुआ निरन्तर वास।
कवँल जु फूला फूल बिना, को निरखै निज दास॥63॥

कबीर कहते हैं कि मैं ससीम से परे अर्थात् पारकर असीम में पहुँच गया और वहाँ मेरी शाश्वत स्थिति हो गई। वहाँ मैंने अनुभव किया कि बिना किसी फूल के एक कमल खिला हुआ जिसे प्रभु-भक्त के सिवाय भला और कौन देख सकता है ?

अन्तरि कँवल प्रकासिका, ब्रह्म वास तहँ होइ।
मन भँवरा तहँ लुबधिया, जानैगा जन कोइ॥64॥

हृदय के अर्न्तमन में कमल अर्थात् ज्योति प्रकाशित हो रही है। वहाँ ब्रह्म का निवास है। मन रूपी भौंरा उस कमल रूपी ज्योति पर लुब्ध होकर उसमें विचरण करता रहता है। इस रहस्य को केवल प्रभु का भक्त ही जान सकता है।

सायर नाहीं सीप नहिं, स्वाति बूँद भी नाँहि।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिखर गढ़ माँहि॥65॥

कबीर कहते हैं कि वहाँ न तो सागर है न सीप है और न ही स्वाति-बूँद अर्थात् मोती में उत्पन्न होने के जितने संभावित कारण हैं, उनमें से एक भी विद्यमान नहीं है, फिर भी इस शरीर के भीतर सहस्रार में मोती उत्पन्न हो रहा है अर्थात् एक अद्‌भुत ज्योति का साक्षात्कार हो रहा है।

घट माँहैं औघट लह्या, औघट माँहैं घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट॥66॥

कबीर कहते हैं कि गुरू ने मार्ग दर्शन किया। परिणामस्वरूप इस शरीर में ही मैंने एक विकट मार्ग का अनुभव किया और उस विकट मार्ग से ही अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। वहाँ मुझे सत्य का दर्शन अर्थात् साक्षात्कार हुआ।

सूर समाना चाँद मैं, दुहूँ किया घर एक।
मन का चेता तब भया, कछू पूरबला लेख॥67॥

जब सूर्य नाड़ी चन्द्र नाड़ी में समाहित हो जाती है अर्थात् सुषुम्ना में चलने लगती है, तब मन का स्वेच्छित फल मिल जाता है। यह पूर्व जन्म के अच्छे कर्मो का ही परिणाम है।

हद्द छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावहीं, तहाँ किया बिसराम॥68॥

कबीर ने सीमित से आगे बढ़कर असीम को प्राप्त कर लिया है। अब वह शून्य के आनन्द-सागर में अवगाहन कर रहे हैं। जो स्थान बड़े-बड़े मुनियों के लिए भी दुर्लभ है, वहाँ पहुँचकर कबीर पूर्ण विश्राम कर रहे हैं।

देखौ करम कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं सो दोसत किया अलेख॥69॥

कबीर कहते हैं कि यह मेरे किसी पूर्व जन्म के पुण्य का फल है कि जिस स्थान को बड़े-बड़े मुनि नहीं प्राप्त कर सकते हैं, वह मुश्किल लक्ष्य, निराकार सत्ता कबीर के लिए प्रिय के समान प्राप्त है।

मन लागा उनमन्न सौ, गगन पहूँचा जाइ।
चाँद बिहूँना चांदिना, अलख निरंजन राइ॥70॥

मेरा मन एक संकल्प-विकल्पात्मक अवस्था के ऊपर राम के मन में मिल गया। वहाँ मैंने एक विचित्र प्रकाश का अनुभव किया, जो कि बिना चन्द्रमा के ही चाँदनी जैसा शीतल और स्निग्ध था। मैंने वहीं उस त्रिगुणातीत, निर्गुण, निराकार सत्ता का दर्शन किया है, जो कि स्थूल इन्द्रियों की पहुँच से परे है।

मन लागा उनमन्न सो, उनमन मनहि विलग।
लौंन विलंगा पानियाँ, पानीं लौंन विलग॥71॥

कबीर कहते हैं कि मेरे संकल्प-विकल्पात्मक मन ने अपना स्वभाव छोड़ दिया और राम के मन में उसी प्रकार से सानिध्य हो गया जैसे नमक और जल मिलकर एक हो जाते हैं।

पानी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कहा न जाइ॥72॥

मानव के भीतर जो साक्षि-चैतन्य है, जो चिन्मात्र है, वह पानी के समान है। वही चिन्मात्र अन्तःकरण से परिसीमित होकर चिदाभास का रूप ग्रहण करता है। यह चिदाभास हिम अर्थात् बर्फ के समान है, क्योंकि जल की अपेक्षा में यह स्थूल है। जैसे बर्फ गलकर फिर पानी की अवस्था में आ जाती है, वैसे ही अन्तःकरण में जो चिदाभास है, वह फिर लीन होने पर चिन्मात्र हो जाता है अर्थात् जीव ब्रह्म के रूप में आ जाता है।

भली भई जु भै पड्या, गई दसा सब भूलि।
पाला गलि पानी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि॥72॥

यह बहुत अच्छा हुआ कि मैं अपनी सांसारिक दशा को भूल गया और वास्तविक स्वरूप में परिणत हो गया। यह वैसे ही है जैसे हिम परिणत होकर जल हो जाता है और लुढ़क कर किनारे के जल में विलीन हो जाता है।

चौहटै चिंतामणि चढ़ी, हाड़ी मारत हाथि।
मीराँ मुझसू मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि॥73॥

जीवन-यात्र में मैं उस चौराहे पर पहुँच गया हूँ जहाँ प्रभु से साक्षात्कार हो गया है। परन्तु अर्न्तमन में स्थित काम, क्रोध, मोह रूपी डाकू मेरी उस अमूल्य निधि को छीन लेना चाहते हैं। हे दया के सागर मेरे ऊपर दया करो जिससे अब मैं इन सबों के चक्कर में न पड़ूँ।

पंखि उड़ानी गगन कौं, पिण्ड रहा परदेस।
पानी पीया चंचु बिनु, भूलि या यहु देस॥74॥

जीव रूपी पक्षी (हंस) कुण्डलिनी के सहारे सहस्रार तक उड़ गया अर्थात् परमतत्त्व का साक्षात्कार कर लिया और यह भौतिक शरीर अपने स्थान पर यों ही पड़ा रहा, जो कि अब उस जीव के लिए परदेश-सा हो गया है। जब जीव को परमतत्त्व का अनुभव नहीं था, तब उसके लिए शरीर स्वदेश और परमतत्त्व परदेश था। अब परमतत्त्व स्वदेश हो गया और शरीर परदेश हो गया। उसने इन्द्रियों के बिना ही आनन्द रस का पान किया और सांसारिक दशा को भूल गया अर्थात् इससे अब उसकी आसक्ति जाती रही।

सुरति समानी निरति मैं, अजपा माँहै जाप।
लेख समानां अलेख मैं, यौं आपा माँहै आप॥75॥

साधना की प्रगति में साधक स्थूल से सूक्ष्म, शब्द से अशब्द, प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष, साकार से निराकार, ससीम से असीम, अहंकार से निरहंकार की ओर बढ़ता चला जाता है और जब वह अशब्द, निराकार, अप्रत्यक्ष और निरहंकार अवस्था पर पहुँचता है, तब उसे ब्रह्म-तत्त्व का वास्तविक दर्शन होता है।

आया था संसार में, देखन कौ बहुत रूप।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप॥76॥

कबीर कहते हैं कि हे संतो ! मैंने संसार में अनेक रूप देखने के लिए जन्म लिया था, परन्तु इन्हीं रूपों के भीतर अनुपम तत्त्व, जो अरूप है, मेरी दृष्टि में पड़ गया अर्थात् मुझे अनुपम तत्त्व का दर्शन हो गया।

धरती गगन पवन नहिं होता, नहिं तोया नहिं तारा।
तब हरि हरि के जन हते, कहै कबीर विचारा॥77॥

कबीर कहते हैं कि सृष्टि के पूर्व पृथ्वी, आकाश, पवन, जल, अग्नि ये पाँचों तत्त्व नहीं थे। उस समय केवल हरि ओर उनके भक्त (जीव), अंशी और अंश ही थे।

जा दिन किरतम नां हता, नहीं हाट नहिं बाट।
हुता कबीरा राम जन, जिन देखा औघट घाट॥78॥

जिस समय यह सृष्टि नहीं थी, संसार रूपी बाजार नहीं था, उस समय केवल रामभक्त आदि गुरू कबीर था, जिसको लक्ष्य तक पहुँचने के कठिन और दुर्गम मार्ग का ज्ञान था।

थिति पाई मन थिर भया, सतगुरु करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ॥79॥

सद्गुरु की कृपा से मैं तत्त्व में प्रतिष्ठित हो गया और मेरा मन अब स्थिर हो गया है, उसकी चंचलता जाती रही। मेरे भीतर अनन्य चरितार्थ हो गया और हृदय में भगवान त्रिभुवनपति विराजमान हो गए।

हरि संगति सीतल भया मिटी मोह की ताप।
निस बासुरि सुखनिधि लहा, (जब) अंतरिप्रगटा आप॥80॥

अनन्तर में आत्म-दर्शन होने पर प्रभु से तादात्म्य हो गया, मोह की ज्वाला मिट गई और मैं निरन्तर आनन्द-निधि का अनुभव कर रहा हूँ।

तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ।
ज्वाला तै फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ॥81॥

दर्शन मात्र होने से मन में पूर्ण निश्चय हो गया, संशय हमेशा के लिए समाप्त हो गया। उस स्थिति का मैं शब्द-व्याखन नहीं कर सकता। मोह की ज्वाला जल में परिणत हो गयी। जलती हुई मोह की आग पूर्ण रूप से बुझ गयी अर्थात् परिचय द्वारा पूर्ण शान्ति आ गयी।

जिनि पाया तिनि सुगहगह्या, रसनाँ लागी स्वादि।
रतन निराला पाइया, जगत ढंढोल्या बादि॥82॥

जिन्होंने परम तत्त्व को प्राप्त किया, उन्होंने पूर्ण रूप से हृदय में प्रतिष्ठित कर लिया है, उसके माधुर्य का उन्होंने पूर्ण रूप से आस्वादन किया। उनको एक अनुपम रत्न मिल गया है। वह अब जगत् में और कुछ ढूँढना व्यर्थ समझते हैं अर्थात् परमार्थ के प्राप्त होने पर अन्य अर्थ की क्या आवश्यकता है ?

कबीर दिल साबित भया, पापा फल समरत्थ।
सायत माँहि ढँढोलता, हीरै पड़ि गया हत्थ॥83॥

कबीर कहते हैं कि मैं भव-सागर में अपने इष्ट को टटोल रहा था। गुरू कृपा से मेरे हाथ हीरा ही आ गया अर्थात् सर्वोत्कृष्ट इष्ट मुझे प्राप्त हो गया। फिर तो मेरा हृदय परिपूर्ण हो गया और मैंने जीवन का सर्व-अर्थकारी परमोत्कृष्ट सम्यक्-लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहि।
प्रेम गली अति साँकरी, या में दो न समाँहि॥84॥

मनुष्य में जब तक अहम विद्यमान रहता है तब तक प्रभु दर्शन दुर्लभ होता है। अहम मिटते ही प्रभु से मिलन हो जाता है। प्रेम की यह विशेषता है कि यद्यपि

यह प्रारम्भ दो में होता है, तथापि जब तक द्वैत बना रहता है, तब तक उसमें परिपूर्णता नहीं आती।

जा कारणि मैं ढूँढ़ता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सक्कौं पाई॥85॥

जिसके दर्शन के लिए मैं परेशान था वह आज मेरे सम्मुख है। परन्तु मैं इस संकोच में पड़ा हूँ कि कितना पाप-पंकिल, क्षुद्र-जीव हूँ और मेरा प्रिय कितना शुभ्र और महान् कि मैं पैर पकड़ने का भी साहस न कर सका।

जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाया ठौर।
सोई फिरि आपन भया, जाको कहता और॥86॥

जिसके लिए मैं इधर-उधर भटक रहा था, उसको अपने भीतर ही पा लिया। जिसको मैं अन्य कहता था, अब देखता हूँ कि वही वास्तविक अपना है।

कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज पारस धनी, नैननि रहा समाय॥87॥

भाग्योदय हुआ उसका साक्षात्कार हुआ, जो अगम था, जिस तक किसी की पहुँच न थी। उसके गौरव और महात्मय का वर्णन असम्भव है। वह ज्योति-पुञ्ज है और अपने स्पर्श से पापी को भी पुण्यात्मा बनाने वाला पारस जैसा सौभाग्यदायक है। अब वह मेरे नेत्रों में समा गया है अर्थात् मेरी दृष्टि से विलुप्त नहीं होता।

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं॥88॥

जीव सुषुम्नामार्ग से पहुँचकर शून्य शिखर पर स्थित अमृत कुड में केलि कर रहा है और आनन्द रूपी मोती स्वच्छन्द रूप से जी भर कर चुग रहा है। इस आनन्द को छोड़कर वह अन्यत्र सांसारिक विषयों की ओर नहीं जा सकता।

गगन गरजि अमृत चुवै, कदली कँवल प्रकास।
तहाँ कबीरा बंदगी, कै कोई निज दास॥89॥

आकाश के गर्जन से वह अनहद नाद जो सहस्रार में नित्य हुआ करता है और वहाँ से अमृत के समान शक्ति का क्षरण होता रहता है। मेरुदण्ड की सुषुम्ना नाड़ी में चक्रों का प्रकाश होता रहता है। कबीर कहते हैं कि इस अपूर्व अनुभूति के प्रत्यक्ष होने पर सिर झुक जाता है अथवा कोई और प्रभु का भक्त हो, जिसे यह अनुभूति हो जाय तो उसका सिर झुक जाएगा।

नींव बिहूनां देहुरा, देह बिहूनां देव।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करै अलख की सेव॥90॥

शून्य शिखर तक पहुँचने पर जीव को एक ऐसे दिव्य भाव का दर्शन होता है, जिसका सादृश्य स्थूल जगत् में नहीं मिलता। स्थूल जगत् में सुदृढ़ नीव पर बने हुए ईंट-पत्थर के देवालय में देव का दर्शन होता है, किन्तु वहाँ पर बिना किसी नींव के देवालय में देव के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता है और वह देव भी निराकार होता है। कबीर उसका अनुभव कर उसमें रम गया और अलक्ष्य सत् की सेवा में लग गया।

देवल माँहे देहुरी, तिल जेता बिस्तार।
माँहे पाती माँहि जल, माँ है पूजन हार॥91॥

इसी शरीर रूपी देवालय में प्रवेश करने के लिए देहली विद्यमान है, जिसकी परिधि तिल के समान सूक्ष्म है। इस देवालय में बाहर से जल, पत्र आदि नहीं लाया जाता, भीतर ही पत्र है, जल है और पूजनेवाला भी है।

कबीर कँवल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
निसि अँधियारी मिटि गई, बाजे अनहद तूर॥92॥

कबीर कहते हैं कि सहस्रार के प्रकाश का भान हो गया, ज्ञान का सूर्य उदय हो गया, अज्ञान की अँधेरी रात समाप्त हो गई और अनाहत नाद की तुरही बजने लगी।

आकासे मुखि औंधा कुआँ, पाताले पनिहारि।
ताका जल कोई हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥93॥

गगम-मण्डल में एक सहस्रार रूपी अधोमुख कुआँ है जिसका मुख नीचे की ओर है, पाताल अर्थात् मूलाधार चक्र में पनिहारिन रूपी कुण्डलिनी स्थित है। जब साधना द्वारा वह सुषुम्ना मार्ग से होकर सहस्रार में पहुँचती है, तब शुद्ध जीव उसके अमृत-जल को पीने में समर्थ होता है। इस मूलतत्त्व पर किसी बिरले ने ही विचार किया है अर्थात् इसे कोई बिरला ही समझता है।

सिव सक्ति दिसि को जुवै, पछिम दिसा उठै धूरि।
जल में सिंह जु घर करै, मछली चढ़ै खजूरि॥94॥

सिद्धों, नाथ योगियों और कबीर में 'सक्ति' इड़ा का प्रतीक है और 'सिव' पिंगला का। जब मछली रूपी कुण्डलिनी ऊपर सहस्रार तक पहुँच जाती है, तब सिंह रूपी जीव मानसरोवर में अवगाहन करने लगता है। अर्थात् कुण्डलिनी का जागरण तभी संभव होता है, जब इड़ा-पिंगला में स्थित प्राण-अपान वायु

तुल्यबल हो जायँ। किन्तु कोई ऐसा विरला ही जीव है, जो इस मार्ग का अनुसंधान कर सकता है।

अमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारखी, अनुभौ उतर्या पार॥95॥

कबीर कहते हैं कि जब शुद्ध अनाहत नाद का परिचय हो जाता है, तब संकल्प-विकल्पात्मक मन उसी में लय को प्राप्त हो जाता है। हमने उसका परिचय प्राप्त कर लिया है और अपने अनुभव से भव-सागर के पार उतर गये हैं।

ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघारी पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौलि॥96॥

प्रभु ने प्रेम रहस्य का द्वार खोल दिया। इससे मुझको दयामय प्रभु का दर्शन हो गया। अब ममता मेरा क्या बिगाड़ सकती है? अहं और मम का भाव ही समाप्त हो गया है और भव का कष्ट सुख की चादर बन गया अर्थात् सभी दु:ख आनन्द में परिणत हो गए।

:: लाँबि ::

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
बूँद समानी समुंद मैं, सो कत हैरी जाइ॥97॥

जैसे बूँद समुद्र को ढूँढते-ढूँढते जब उसमें मिल जाती है, तब उसका पृथक् अस्तित्त्व नहीं रह जाता है। वैसे ही परम को ढूँढते-ढूँढते मेरा अहं उसी में खो गया और उसका पृथक् अस्तित्त्व समाप्त हो गया। अर्थात् यह जीव जो पहले नाम-रूप को लेकर 'अहं' बना हुआ था, अब प्रभु की खोज में चलते-चलते नाम-रूप से पृथक् होकर प्रभु से तादात्म्य प्राप्त कर लिया है।

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
समुंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्या जाइ॥98॥

कबीर कहते हैं कि हे भाई सन्तो ! प्रभु को खोजते-खोजते मैं स्वंय खो गया। समुद्र (अंशी) ने बूँद (अंश) को आत्मसात् कर लिया। अब उस बूँद का पृथक् अस्तित्त्व कैसे खोजा जा सकता है ? अर्थात् एक बार प्रभु से आत्मसात् होने के पश्चात उससे विरक्त नहीं हुआ जा सकता।

3

सूरदास

सूरदास कवियों में सर्वोपरि है। हिन्दी साहित्य में भगवान श्रीकृष्ण के अनन्य उपासक और ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि महात्मा सूरदास 'हिंदी साहित्य, के 'सूर्य, माने जाते हैं।

जीवन परिचय

सूरदास का जन्म 1540 (वि. स.) में रुनकता नामक गाँव में हुआ। यह गाँव मथुरा-आगरा मार्ग के किनारे स्थित है। कुछ विद्वानों का मत है कि सूर का जन्म सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वह बहुत विद्वान थे, उनकी लोग आज भी चर्चा करते हैं।--- मथुरा के बीच गऊघाट पर आकर रहने लगे थे। सूरदास के पिता, रामदास गायक थे। सूरदास के जन्मांध होने के विषय में मतभेद है। प्रारंभ में सूरदास आगरा के समीप गऊघाट पर रहते थे। वहीं उनकी भेंट श्री वल्लभाचार्य से हुई और वे उनके शिष्य बन गए। वल्लभाचार्य ने उनको पुष्टिमार्ग में दीक्षित कर के कृष्णलीला के पद गाने का आदेश दिया। सूरदास की मृत्यु गोवर्धन के निकट पारसौली ग्राम में 1580 ईस्वी में हुई।

सूरदास बनना

मदन मोहन एक बहुत ही सुन्दर और तेज बुद्धि के नवयुवक थे वह हर दिन नदी के किनारे जा कर बैठ जाता और गीत लिखता।। एक दिन एक ऐसा

वाकया हुआ जिसने उसके मन को मोह लिया। हुआ ये की एक सुन्दर नवयुवती नदी किनारे कपड़े धो रही थी, मदन मोहन का ध्यान उसकी तरफ चला गया। उस युवती ने मदन मोहन को ऐसा आकर्षित किया की वह कविता लिखना भूल गए और पूरा ध्यान लगा कर उस युवती को देखने लगे। उनको ऐसा लगा मानो यमुना किनारे राधिका स्नान कर के बैठी हो। उस नवयुवती ने भी मदन मोहन की तरफ देखा और उनके पास आकर बोली आप मदन मोहन जी हो ना? तो वह बोले, हां मैं मदन मोहन हूँ। कवितायें लिखता हूँ तथा गाता हूँ आपको देखा तो रुक गया। नवयुवती ने पूछा क्यों ? तो वह बोले आप हो ही इतनी सुन्दर। यह सिलसिला कई दिनों तक चला। जब यह बात मदन मोहन के पिता को पता चली तो उनको बहुत क्रोध आया। फिर मदन मोहन ने उसका घर छोड़ दिया। पर उस सुन्दर युवती का चेहरा उनके सामने से नहीं जा रहा था। एक दिन वह मंदिर में बैठे थे तभी वहां एक शादीशुदा बहुत ही सुन्दर स्त्री आई। मदन मोहन उसके पीछे-पीछे चल दिए। जब वह उसके घर पहुंचे तो उसके पति ने दरवाजा खोला तथा पूरे आदर सम्मान के साथ उन्हें अंदर बिठाया। फिर मदन मोहन ने दो जलती हुए सिलाया मांगी तथा उसे अपनी आँख में डाल दी। इस तरह मदन मोहन बने महान कवि सूरदास।

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में मतभेद

सूरदास की जन्मतिथि एवं जन्मस्थान के विषय में विद्वानों में मतभेद है। 'साहित्य लहरी' सूर की लिखी रचना मानी जाती है। इसमें साहित्य लहरी के रचना-काल के सम्बन्ध में निम्न पद मिलता है -

मुनि पुनि के रस लेख।
दसन गौरीनन्द को लिखि सुवल संवत् पेख-

इसका अर्थ संवत् 1607 ईस्वी में माना गया है, अतएव 'साहित्य लहरी' का रचना काल संवत् 1607 वि0 है। इस ग्रन्थ से यह भी प्रमाण मिलता है कि सूर के गुरु श्री वल्लभाचार्य थे।

सूरदास का जन्म सं0 1540 ईस्वी के लगभग ठहरता है, क्योंकि बल्लभ सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि बल्लभाचार्य सूरदास से दस दिन बड़े थे और बल्लभाचार्य का जन्म उक्त संवत् की वैशाख् कृष्ण एकादशी को हुआ था। इसलिए सूरदास की जन्म-तिथि वैशाख शुक्ला पंचमी, संवत् 1535 वि0 समीचीन जान पड़ती है। अनेक प्रमाणों के आधार पर उनका मृत्यु संवत् 1620

से 1648 ईस्वी के मध्य स्वीकार किया जाता है। रामचन्द्र शुक्ल जी के मतानुसार सूरदास का जन्म संवत् 1540 वि0 के सन्निकट और मृत्यु संवत् 1620 ईस्वी के आसपास माना जाता है।

श्री गुरु बल्लभ तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।

सूरदास की आयु 'सूरसारावली' के अनुसार उस समय 67 वर्ष थी। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के आधार पर उनका जन्म रुनकता अथवा रेणु का क्षेत्र (वर्तमान जिला आगरान्तर्गत) में हुआ था। मथुरा और आगरा के बीच गऊघाट पर ये निवास करते थे। बल्लभाचार्य से इनकी भेंट वहीं पर हुई थी। 'भावप्रकाश' में सूर का जन्म स्थान सीही नामक ग्राम बताया गया है। वे सारस्वत ब्राह्मण थे और जन्म के अंधे थे। 'आइने अकबरी' में (संवत् 1653 ईस्वी) तथा 'मुतखबुत-तवारीख' के अनुसार सूरदास को अकबर के दरबारी संगीतज्ञों में माना है।

क्या सूरदास जन्मान्ध थे?

सूरदास श्रीनाथ की 'संस्कृतवार्ता मणिपाला', श्री हरिराय कृत 'भाव-प्रकाश', श्री गोकुलनाथ की 'निजवार्ता' आदि ग्रन्थों के आधार पर, जन्म के अन्धे माने गए हैं। लेकिन राधा-कृष्ण के रूप सौन्दर्य का सजीव चित्रण, नाना रंगों का वर्णन, सूक्ष्म पर्यवेक्षणशीलता आदि गुणों के कारण अधिकतर वर्तमान विद्वान सूर को जन्मान्ध स्वीकार नहीं करते।

श्यामसुन्दर दास ने इस सम्बन्ध में लिखा है - 'सूर वास्तव में जन्मान्ध नहीं थे, क्योंकि शृंगार तथा रंग-रूपादि का जो वर्णन उन्होंने किया है वैसा कोई जन्मान्ध नहीं कर सकता।' डॉक्टर (हजारीप्रसाद द्विवेदी) ने लिखा है - 'सूरसागर के कुछ पदों से यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि सूरदास अपने को जन्म का अन्धा और कर्म का अभागा कहते हैं, पर सब समय इसके अक्षरार्थ को ही प्रधान नहीं मानना चाहिए।'

रचनाएँ

सूरदास जी द्वारा लिखित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं–

(1) सूरसागर - जो सूरदास की प्रसिद्ध रचना है। जिसमें सवा लाख पद संग्रहित थे। किंतु अब सात-आठ हजार पद ही मिलते हैं।

(2) सूरसारावली

(3) साहित्य-लहरी - जिसमें उनके कूट पद संकलित हैं।

(4) नल-दमयन्ती

(5) ब्याहलो

(6) 'पद संग्रह' दुर्लभ पद 7-

उपरोक्त में अन्तिम दो अप्राप्य हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रन्थों का उल्लेख है। इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती, ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत्, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं। इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, साहित्य लहरी की प्राप्त प्रति में बहुत प्रक्षिप्तांश जुड़े हुए हैं।

'साहित्य लहरी, सूरसागर, सूर की सारावली। श्रीकृष्ण जी की बाल-छवि पर लेखनी अनुपम चली।।'

सूरसागर का मुख्य वर्ण्य विषय श्री कृष्ण की लीलाओं का गान रहा है।

सूरसारावली में कवि ने जिन कृष्ण विषयक कथात्मक और सेवा परक पदों का गान किया उन्हीं के सार रूप में उन्होंने सारावली की रचना की है।

सहित्यलहरी मैं सूर के दृष्टिकूट पद संकलित हैं।

सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

1. सूरदास के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मनुष्य को सद्गति मिल सकती है। अटल भक्ति कर्मभेद, जातिभेद, ज्ञान, योग से श्रेष्ठ है।
2. सूर ने वात्सल्य, शृंगार और शांत रसों को मुख्य रूप से अपनाया है। सूर ने अपनी कल्पना और प्रतिभा के सहारे कृष्ण के बाल्य-रूप का अति सुंदर, सरस, सजीव और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है। बालकों की चपलता, स्पर्धा, अभिलाषा, आकांक्षा का वर्णन करने में विश्व व्यापी बाल-स्वरूप का चित्रण किया है। बाल-कृष्ण की एक-एक चेष्टा के चित्रण में कवि ने कमाल की होशियारी एवं सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है–

मैया कबहिं बढ़ैगी चौटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।

सूर के कृष्ण प्रेम और माधुर्य प्रतिमूर्ति है। जिसकी अभिव्यक्ति बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव रूप में हुई है।

3. जो कोमलकांत पदावली, भावानुकूल शब्द-चयन, सार्थक अलंकार-योजना, धारावाही प्रवाह, संगीतात्मकता एवं सजीवता सूर की भाषा में है, उसे देखकर तो यही कहना पड़ता है कि सूर ने ही सर्व प्रथम ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप दिया है।
4. सूर ने भक्ति के साथ शृंगार को जोड़कर उसके संयोग-वियोग पक्षों का जैसा वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।
5. सूर ने विनय के पद भी रचे हैं, जिसमें उनकी दास्य-भावना कहीं-कहीं तुलसीदास से आगे बढ़ जाती है-

हमारे प्रभु औगुन चित न धरौ।
समदरसी है मान तुम्हारौ, सोई पार करौ।

6. सूर ने स्थान-स्थान पर कूट पद भी लिखे हैं।
7. प्रेम के स्वच्छ और मार्जित रूप का चित्रण भारतीय साहित्य में किसी और कवि ने नहीं किया है यह सूरदास की अपनी विशेषता है। वियोग के समय राधिका का जो चित्र सूरदास ने चित्रित किया है, वह इस प्रेम के योग्य है
8. सूर ने यशोदा आदि के शील, गुण आदि का सुंदर चित्रण किया है।
9. सूर का भ्रमरगीत वियोग-शृंगार का ही उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं है, उसमें सगुण और निर्गुण का भी विवेचन हुआ है। इसमें विशेषकर उद्धव-गोपी संवादों में हास्य-व्यंग्य के अच्छे छींटें भी मिलते हैं।
10. सूर काव्य में प्रकृति-सौंदर्य का सूक्ष्म और सजीव वर्णन मिलता है।
11. सूर की कविता में पुराने आख्यानों और कथनों का उल्लेख बहुत स्थानों में मिलता है।
12. सूर के गेय पदों में हृदयस्थ भावों की बड़ी सुंदर व्यंजना हुई है। उनके कृष्ण-लीला संबंधी पदों में सूर के भक्त और कवि हृदय की सुंदर झाँकी मिलती है।
13. सूर का काव्य भाव-पक्ष की दृष्टि से ही महान नहीं है, कला-पक्ष की दृष्टि से भी वह उतना ही महत्वपूर्ण है। सूर की भाषा सरल, स्वाभाविक तथा वाग्वैदिग्धपूर्ण है। अलंकार-योजना की दृष्टि से भी उनका कला-पक्ष सबल है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूर की कवित्व-शक्ति के बारे में लिखा है-

सूरदास जब अपने प्रिय विषय का वर्णन शुरू करते हैं तो मानो अलंकार-शास्त्र हाथ जोड़कर उनके पीछे-पीछे दौड़ा करता है। उपमाओं की बाढ़ आ जाती है, रूपकों की वर्षा होने लगती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास हिंदी साहित्य के महाकवि हैं, क्योंकि उन्होंने न केवल भाव और भाषा की दृष्टि से साहित्य को सुसज्जित किया, वरन् कृष्ण-काव्य की विशिष्ट परंपरा को भी जन्म दिया।

सूरदास की रचनाएँ

1.

अंखियां हरि-दरसन की प्यासी।
देख्यौ चाहति कमलनैन कौ-निसि-दिन रहति उदासी।।
आए ऊधै फिरि गए आंगन-डारि गए गर फांसी।
केसरि तिलक मोतिन की माला-वृन्दावन के बासी।।
काहू के मन को कोउ न जानत-लोगन के मन हांसी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ-करवत लैहौं कासी।।

2.

निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पर, जबते स्याम सिधारे।।
अंजन थिर न रहत अँखियन में, कर कपोल भये कारे।
कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहुँ, उर बिच बहत पनारे।।
आँसू सलिल भये पग थाके, बहे जात सित तारे।
'सूरदास' अब डूबत है ब्रज, काहे न लेत उबारे।।

3.

मधुकर! स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियो सांवरी सूरत-चितै नयन की कोर।।
पकरयो तेहि हिरदय उर-अंतर प्रेम-प्रीत के जोर।
गए छुड़ाय छोरि सब बंधन दे गए हंसनि अंकोर।।
सोबत तें हम उचकी परी हैं दूत मिल्यो मोहिं भोर।
सूर-स्याम मुसकाहि मेरो सर्वस सै गए नंद किसोर।।

4.

बिनु गोपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल-अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।
बृथा बहति जमुना-खग बोलत-बृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं।
पवन-पानी-धनसार-संजीवनि दधिसुत किरनभानु भई भुंजैं।
ये ऊधो कहियो माधव सों-बिरह करद करि मारत लुंजैं।
सूरदास प्रभु को मग जोवत-अंखियां भई बरन ज्यौं गुजैं।

5.

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपै प्रान दह्यो।।
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सोंग संपति हाथ गह्यो।
सारंग प्रीति करी जो नाद सों-सन्मुख बान सह्यो।।
हम जो प्रीति करी माधव सों-चलत न कछू कह्यो।
'सूरदास' प्रभु बिन दुख दूनो-नैननि नीर बह्यो।।

6.

राग गौरी
कहियौ, नंद कठोर भये।
हम दोउ बीरैं डारि परघरै, मानो थाती सौंपि गये।।
तनक-तनक तैं पालि बड़े किये, बहुतै सुख दिखराये।
गो चारन कों चालत हमारे पीछे कोसक धाये।।
ये बसुदेव देवकी हमसों कहत आपने जाये।
बहुरि बिधाता जसुमतिजू के हमहिं न गोद खिलाये।।
कौन काज यहि राजनगरि कौ, सब सुख सों सुख पाये।
सूरदास, ब्रज समाधान करु, आजु-काल्हि हम आय।।

भावार्थ – श्रीकृष्ण अपने परम ज्ञानी सखा उद्धव को मोहान्ध ब्रजवासियों में ज्ञान प्रचार करने के लिए भेज रहे हैं। इस पद में नंद बाबा के प्रति संदेश भेजा है। कहते है–– 'बाबा, तुम इतने कठोर हो गये हो कि हम दोनों भाइयों को पराये घर में धरोहर की भांति सौंप कर चले गए। जब हम जरा-जरा से

थे, तभी से तुमने हमें पाल-पोसकर बड़ा किया, अनेक सुख दिए। वे बातें भूलने की नहीं। जब हम गाय चराने जाते थे, तब तुम एक कोस तक हमारे पीछे-पीछे दौड़ते चले आते थे। हम तो बाबा, सब तरह से तुम्हारे ही हैं। पर वसुदेव और देवकी का अनधिकार तो देखो। ये लोग नंद-यशोदा के कृष्ण-बलराम को आज 'अपने जाये पूत" कहते हैं। वह दिन कब होगा, जब हमें यशोदा मैया फिर अपनी गोद में खिलायेंगी। इस राजनगरी, मथुरा के सुख को लेकर क्या करें ! हमें तो अपने ब्रज में ही सब प्रकार का सूख था। उद्धव, तुम उन सबको अच्छी तरह से समझा-बुझा देना, और कहना कि दो-चार दिन में हम अवश्य आयेंगे।"

शब्दार्थ – बीरैं =भाइयों को। परघरै =दूसरे के घर में। थाती = धरोहर। तनक-तनक तें =छुटपन से। कोसक =एक कोस तक। समाधान =सझना, शांति

7.

राग सारंग
नीके रहियौ जसुमति मैया।
आवहिंगे दिन चारि पांच में हम हलधर दोउ भैया।।
जा दिन तें हम तुम तें बिछुरै, कह्यौ न कोउ कन्हैया'।
कबहुं प्रात न कियौ कलेवा, सांझ न पीन्हीं पैया।।
वंशी बैत विषान दैखियौ द्वार अबेर सबेरो।
लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो।।
कहियौ जाइ नंद बाबा सों, बहुत निठुर मन कीन्हौं।
सूरदास, पहुंचाइ मधुपुरी बहुरि न सोधौ लीन्हौं।।

भावार्थ – 'कह्यौ न कोउ कन्हैया' यहां मथुरा में तो सब लोग कृष्ण और यदुराज के नाम से पुकारते है, मेरा प्यार का 'कन्हैया' नाम कोई नहीं लेता। 'लै जिनि जाइ चुराइ राधिका' राधिका के प्रति 12 बर्ष के कुमार कृष्ण का निर्मल प्रेम था, यह इस पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है। राधा कहीं मेरा खिलौना न चुरा ले जाय, कैसी बालको-चित सरलोक्ति है।

शब्दार्थ – नीके रहियौ = कोई चिन्ता न करना। न पीन्हीं पैया = ताजे दूध की धार पीने को नहीं मिली। बिषान = सींग, (बजाने का) । अबेर सबेरी = समय-असमय, बीच-बीच में जब अवसर मिले। सोधौ =खबर भी

8.

राग देश

जोग ठगौरी ब्रज न बिकहै।

यह ब्योपार तिहारो ऊधौ, ऐसोई फिरि जैहै।।

यह जापे लै आये हौ मधुकर, ताके उर न समैहै।

दाख छांडि कैं कटुक निबौरी को अपने मुख खैहै।।

मूरी के पातन के कैना को मुकताहल दैहै।

सूरदास, प्रभु गुनहिं छांड़िकै को निरगुन निरबैहै।।

भावार्थ – उद्धव ने कृष्ण-विरहिणी ब्रजांगनाओं को योगभ्यास द्वारा निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिए जब उपदेश दिया, तो वे ब्रजवल्लभ उपासिनी गोपियां कहती हैं कि इस ब्रज में तुम्हारे योग का सौदा बिकने का नहीं। जिन्होंने सगुण ब्रह्म कृष्ण का प्रेम-रस-पान कर लिया, उन्हें तुम्हारे नीरस निर्गुण ब्रह्म की बातें भला क्यों पसन्द आने लगीं ! अंगूर छोड़कर कौन मूर्ख निबोरियां खायगा ? मोतियों को देकर कौन मूढ़ बदले में मूली के पत्ते खरीदेगा ? योग का यह ठग व्यवसाय प्रेमभूमि ब्रज में चलने का नहीं।

शब्दार्थ – ठगौरी = ठगी का सौदा। एसोइ फिरि जैहैं = योंही बिना बेचे वापस ले जाना होगा। जापै = जिसके लिए। उर न समैहै = हृदय में न आएगा। निबौरी =नींम का फल। मूरी = मूली। केना =अनाज के रूप में साग-भाजी की कीमत, जिसे देहात में कहीं-कहीं देकर मामूली तरकारियां खरीदते थे। मुकताहल = मोती। निर्गुन =सत्य, रज और तमोगुण से रहित निराकार ब्रह्म

9.

राग टोडी

ऊधो, होहु इहां तैं न्यारे।

तुमहिं देखि तन अधिक तपत है, अरु नयननि के तारे।।

अपनो जोग सैंति किन राखत, इहां देत कत डारे।

तुम्हरे हित अपने मुख करिहैं, मीठे तें नहिं खारे।।

हम गिरिधर के नाम गुननि बस, और काहि उर धारे।

सूरदास, हम सबै एकमत तुम सब खोटे कारे।।

भावार्थ – 'तुमहि..तारे, ' तुम जले पर और जलाते हो, एक तो कृष्ण की विरहाग्नि से हम योंही जली जाती हैं उस पर तुम योग की दाहक बातें सुना रहे

हो। आंखें योंही जल रही हैं। हमारे जिन नेत्रों में प्यारे कृष्ण बस रहे हैं, उनमें तुम निर्गुण निराकार ब्रह्म बसाने को कह रहे हो। 'अपनो.डारें', तुम्हारा योग-शास्त्र तो एक बहुमूल्य वस्तु है, उसे हम जैसी गंवार गोपियों के आगे क्यों व्यर्थ बरबाद कर रहे हो। 'तुम्हारे.खारे, ' तुम्हारे लिए हम अपने मीठे को खारा नहीं कर सकतीं, प्यारे मोहन की मीठी याद को छोड़कर तुम्हारे नीरस निर्गुण ज्ञान का आस्वादन भला हम क्यों करने चलीं?

शब्दार्थ – न्यारे होहु = चले जाओ। सैंति = भली-भांति संचित करके। खोटे = बुरे

10.

राग केदारा
फिर फिर कहा सिखावत बात।
प्रात काल उठि देखत ऊधो, घर घर माखन खात।।
जाकी बात कहत हौ हम सों, सो है हम तैं दूरि।
इहं हैं निकट जसोदानन्दन प्रान-सजीवनि भूरि।।
बालक संग लियें दधि चोरत, खात खवावत डोलत।
सूर, सीस नीचौं कत नावत, अब नहिं बोलत।।

11.

राग रामकली
उधो, मन नाहीं दस बीस।
एक हुतो सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस।।
सिथिल भई सबहीं माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकिरही आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस।।
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस।
सूरदास, रसिकन की बतियां पुरवौ मन जगदीस।।

टिप्पणी – गोपियां कहती है, 'मन तो हमारा एक ही है, दस-बीस मन तो हैं नहीं कि एक को किसी के लगा दें और दूसरे को किसी और में। अब वह भी नहीं है, कृष्ण के साथ अब वह भी चला गया। तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म की उपासना अब किस मन से करें? 'स्वासा.बरीस, ' गोपियां कहती हैं, "यों तो हम बिना सिर की-सी हो गई हैं, हम कृष्ण वियोगिनी हैं, तो भी श्याम-मिलन की आशा में इस सिर-विहीन शरीर में हम अपने प्राणों को करोड़ों वर्ष रख सकती हैं। 'सकल जोग के ईस' क्या कहना, तुम तो योगियों में भी शिरोमणि हो। यह व्यंग्य है।

शब्दार्थ – हुतो =था। अवराधै = आराधना करे, उपासना करे। ईस =निर्गुण ईश्वर। सिथिल भई = निष्प्राण सी हो गई हैं। स्वासा = श्वास, प्राण। बरीश = वर्ष का अपभ्रंश। पुरवौ मन = मन की इच्छा पूरी करो

12.

राग टोडी

अंखियां हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप-रस रांची ये बतियां सुनि रूखी।।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ये तौ नहिं झूखी।
अब इन जोग संदेसनि ऊधो, अति अकुलानी दूखी।।
बारक वह मुख फेरि दिखावहुदुहि पय पिवत पतूखी।
सूर, जोग जनि नाव चलावहु ये सरिता हैं सूखी।।

भावार्थ –'अंखियां..रूखी, ' जिन आंखों में हरि-दर्शन की भूल लगी हुई है, जो रूप- रस में रंगी जा चुकी हैं, उनकी तृप्ति योग की नीरस बातों से कैसे हो सकती है? 'अवधि..दूखी,' इतनी अधिक खीझ इन आंखों को पहले नहीं हुई थी, क्योंकि श्रीकृष्ण के आने की प्रतीक्षा में अबतक पथ जोहा करती थीं। पर उद्धव, तुम्हारे इन योग के संदेशों से इनका दु:ख बहुत बढ़ गया है।ृजोग जनि. ...सूखी,' अपने योग की नाव तुम कहां चलाने आए हो? सूखी रेत की नदियों में भी कहीं नाव चला करती है? हम विरहिणी ब्रजांगनाओं को क्यों योग के संदेश देकर पीड़ित करते हो ? हम तुम्हारे योग की अधिकारिणी नहीं हैं।

शब्दार्थ – रांची =रंगी हुई अनुरूप। अवधि = नियत समय। झूखी = दु:ख से पछताई खीजी। दु:खी =दु:खित हुई। बारक =एक बार। पतूखी =पत्तेश का छोटा-सा दाना

13.

राग मलार

ऊधो, हम लायक सिख दीजै।
यह उपदेस अगिनि तै तातो, कहो कौन बिधि कीजै।।
तुमहीं कहौ, इहां इतननि में सीखनहारी को है।
जोगी जती रहित माया तैं तिनहीं यह मत सोहै।।
कहा सुनत बिपरीत लोक में यह सब कोई कैहै।
देखौ धौं अपने मन सब कोई तुमहीं दूषन दैहै।।

चंदन अगरु सुगंध जे लेपत, का विभूति तन छाजै।
सूर, कहौ सोभा क्यों पावै आंखि आंधरी आंजै।।

भावार्थ – 'हम लायक, ' हमारे योग्य, हमारे काम की। अधिकारी देखकर उपदेश दो। 'कहौ...कीजै, ' तुम्हीं बताओ, इसे किस तरह ग्रहण करे? 'विपरीत' उलटा, स्त्रियों को भी कठिन योगाभ्यास की शिक्षा दी जा रही है, यह विपरीत बात सुनकर संसार क्या कहेगा ?ृआंखि आंधरी आंजै' अंधी स्त्री यदि आंखों में काजल लगाए तो क्या वह उसे शोभा देगा ? इसी प्रकार चंदन और कपूर का लेप करने वाली कोई स्त्री शरीर पर भस्म रमा ले तो क्या वह शोभा पायेगी ?

शब्दार्थ – सिख = शिक्षा, उपदेश। तातो =गरम। जती =यति, संन्यासी। यह मत सोहै = यह निर्गुणवाद शोभा देता है। कैहै =कहेगा। चंदन अगरु = मलयागिर चंदन विभूति =भस्म, भभूत। छाजै =सोहती है

14.

राग सारंग
ऊधो, मन माने की बात।
दाख छुहारो छांड़ि अमृतफल, बिषकीरा बिष खात।।
जो चकोर कों देइ कपूर कोउ, तजि अंगार अघात।
मधुप करत घर कोरि काठ में, बंधत कमल के पात।।
ज्यों पतंग हित जानि आपुनो दीपक सो लपटात।
सूरदास, जाकौ जासों हित, सोई ताहि सुहात।।

टिप्पणी – 'अंगार अघात,' 'तजि अंगार न अघात' भी पाठ है उसका भी यही अर्थ होता है, अर्थात अंगार को छोड़कर दूसरी चीजों से उसे तृप्ति नहीं होती।ृतजि अंगार कि अघात' भी एक पाठान्तर है। उसका भी यही अर्थ है।

शब्दार्थ –'अंगार अघात,' =अंगारों से तृप्त होता है, प्रवाद है कि चकोर पक्षी अंगार चबा जाता है। कोरि =छेदकर। पात =पत्ता

15.

राग काफी
निरगुन कौन देश कौ बासी।
मधुकर, कहि समुझाइ, सौंह दै बूझति सांच न हांसी।।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।

कैसो बरन, भेष है कैसो, केहि रस में अभिलाषी।।
पावैगो पुनि कियो आपुनो जो रे कहैगो गांसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठगो-सौ सूर सबै मति नासी।।

टिप्पणी – गोपियां ऐसे ब्रह्म की उपासिकाएं हैं, जो उनके लोक में उन्हीं के समान रहता हो, जिनके पिता भी हो, माता भी हो और स्त्री तथा दासी भी हो। उसका सुन्दर वर्ण भी हो, वेश भी मनमोहक हो और स्वभाव भी सरस हो। इसी लिए वे उद्धव से पूछती हैं, " अच्छी बात है, हम तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म से प्रीति जोड़ लेंगी, पर इससे पहले हम तुम्हारे उस निर्गुण का कुछ परिचय चाहती हैं। वह किस देश का रने वाला है, उसके पिता का क्या नाम है, उसकी माता कौन है, कोई उसकी स्त्री भी है, रंग गोरा है या सांवला, वह किस देश में रहता है, उसे क्या-क्या वस्तुएं पसंद हैं, यह सब बतला दो। फिर हम अपने श्यामसुन्दर से उस निर्गुण की तुलना करके बता सकेंगी कि वह प्रीति करने योग्य है या नहीं।" 'पावैगो...गांसी,' जो हमारी बातों का सीधा-सच्चा उत्तर न देकर चुभने वाली व्यंग्य की बातें कहेगा, उसे अपने किए का फल मिल जायगा।

शब्दार्थ – निरगुन = त्रिगुण से रहित ब्रह्म। सौंह =शपथ, कसम। बूझति =पूछती हैं। जनक =पिता। वरन =वर्ण, रंग। गांसी = व्यंग, चुभने वाली बात

16.

राग नट
कहियौ जसुमति की आसीस।
जहां रहौ तहं नंदलाडिले, जीवौ कोटि बरीस।।
मुरली दई, दौहिनी घृत भरि, ऊधो धरि लई सीस।
इह घृत तौ उनहीं सुरभिन कौ जो प्रिय गोप-अधीस।।
ऊधो, चलत सखा जुरि आये ग्वाल बाल दस बीस।
अबकैं ह्यां ब्रज फेरि बसावौ सूरदास के ईस।।

टिप्पणी – 'जहां रहौं..बरीस, ' 'प्यारे नंदनंदन, तुम जहां भी रहो, सदा सुखी रहो और करोड़ों वर्ष चिरंजीवी रहो। नहीं आना है, तो न आओ, मेरा वश ही क्या ! मेरी शुभकामना सदा तुम्हारे साथ बनी रहेगी, तुम चाहे जहां भी रहो।" 'मुरली...सीस, ' यशोदा के पास और देने को है ही क्या, अपने लाल की प्यारी वस्तुएं ही भेज रही हैं- बांसुरी और कृष्ण की प्यारी गौओं का घी। उद्धव ने भी बडे प्रेम से मैया की भेंट सिरमाथे पर ले ली।

शब्दार्थ कोटि बरीस =करोड़ों वर्ष। दोहिनी =मिट्टी का बर्तन, जिसमें दूध दुहा जाता है, छोटी मटकिया। सुरभिन =गाय। जो प्रिय गोप अधीस = जो गोएं ग्वाल-बालों के स्वामी कृष्ण को प्रिय थीं। जुरि आए = इकट्ठे हो गए

17.

राग गोरी

कहां लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम, तुम बिनु उन लोगनि जैसें दिवस बिहात।।
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन कृसगात।
परमदीन जनु सिसिर हिमी हत अंबुज गन बिनु पात।।
जो कहुं आवत देखि दूरि तें पूंछत सब कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर, कर चरननि लपटात।।
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहिं न खात।
सूर, स्याम संदेसनि के डर पथिक न उहिं मग जात।।

भावार्थ – 'परमदीन...पात, ' सारे ब्रजबासी ऐसे श्रीहीन और दीन दिखाई देते है, जैसे शिशिर के पाले से कमल कुम्हला जाता है और पत्ते उसके झुलस जाते हैं। 'पिक ...पावहिं, ' कोमल और पपीहे विरहाग्नि को उत्तेजित करते हैं अत: बेचारे इतने अधिक कोसे जाते हैं कि उन्होंने वहां बसेरा लेना भी छोड़ दिया है। 'बायस...खात, ' कहते हैं कि कौआ घर पर बैठा बोल रहा हो और उसे कुछ खाने को रख दिया जाय, तो उस दिन अपना कोई प्रिय परिजन या मित्र परदेश से आ जाता है। यह शकुन माना जाता है। पर अब कोए भी वहां जाना पसंद नहीं करते। वे बलि की तरफ देखते भी नहीं। यह शकुन भी असत्य हो गया।

शब्दार्थ – विहात =बीतते हैं। मलिन बदन = उदास। सिसिर हिमी हत = शिशिर ऋतु के पाले से मारे हुए। बिनु पात = बिना पत्ते के। कुसलात = कुशल-क्षेम। बायस =कौआ। बलि भोजन का भाग

18.

राग मारू

ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
बृंदावन गोकुल तन आवत सघन तृनन की छाहीं।।
प्रात समय माता जसुमति अरु नंद देखि सुख पावत।

माखन रोटी दह्यो सजायौ अति हित साथ खवावत।।
गोपी ग्वाल बाल संग खेलत सब दिन हंसत सिरात।
सूरदास, धनि धनि ब्रजबासी जिनसों हंसत ब्रजनाथ।।

शब्दार्थ – गोकुल तन = गोकुल की तरफ। तृनन की = वृक्ष–लता आदि की। हित =स्नेह। सिरात = बीतता था।

भावार्थ – निर्मोही मोहन को अपने ब्रज की सुध आ गई। व्याकुल हो उठे, बाल्यकाल का एक–एक दृष्य आंखों में नाचने लगा। वह प्यारा गोकुल, वह सघन लताओं की शीतल छाया, वह मैया का स्नेह, वह बाबा का प्यार, मीठी–मीठी माखन रोटी और वह सुंदर सुगंधित दही, वह माखन–चोरी और ग्वाल बालों के साथ वह ऊधम मचाना ! कहां गये वे दिन? कहां गई वे घड़ियां

4

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास (1511 - 1623) हिंदी साहित्य के महान कवि थे। इनका जन्म सोरों शूकरक्षेत्र, वर्तमान में कासगंज (एटा) उत्तर प्रदेश में हुआ था। कुछ विद्वान् इनका जन्म राजापुर जिला बाँदा(वर्तमान में चित्रकूट) में हुआ मानते हैं। कुछ विद्वान तुलसीदास का जन्म गोण्डा जिला के सुकरखेत को भी मानते है। इन्हें आदि काव्य रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि का अवतार भी माना जाता है। श्रीरामचरितमानस का कथानक रामायण से लिया गया है। रामचरितमानस लोक ग्रन्थ है और इसे उत्तर भारत में बड़े भक्तिभाव से पढ़ा जाता है। इसके बाद विनय पत्रिका उनका एक अन्य महत्त्वपूर्ण काव्य है। महाकाव्य श्रीरामचरितमानस को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय काव्यों में 46वाँ स्थान दिया गया।

जन्म

अधिकांश विद्वान तुलसीदास का जन्म स्थान राजापुर को मानने के पक्ष में हैं। यद्यपि कुछ इसे सोरों शूकरक्षेत्र भी मानते हैं। राजापुर उत्तर प्रदेश के चित्रकूट जिला के अंतर्गत स्थित एक गाँव है। वहाँ आत्माराम दुबे नाम के एक प्रतिष्ठित संध्या नंददास भक्तिकाल में पुष्टिमार्गीय अष्टछाप के कवि नंददास जी का जन्म जनपद- कासगंज के सोरों शूकरक्षेत्र अन्तर्वेदी रामपुर (वर्तमान- श्यामपुर) गाँव निवासी भरद्वाज गोत्रीय सनाढ्य ब्राह्मण पं. सच्चिदानंद शुक्ल के पुत्र पं0 जीवाराम शुक्ल की पत्नी चंपा के गर्भ से सम्वत्- 1572 विक्रमी में हुआ था।

पं0 सच्चिदानंद के दो पुत्र थे, पं0 आत्माराम शुक्ल और पं0 जीवाराम शुक्ल। पं0 आत्माराम शुक्ल एवं हुलसी के पुत्र का नाम महाकवि गोस्वामी तुलसीदास था, जिन्होंने श्रीरामचरितमानस महाग्रंथ की रचना की थी। नंददास जी के छोटे भाई का नाम चँदहास था। नंददास जी, तुलसीदास जी के सगे चचेरे भाई थे। नंददास जी के पुत्र का नाम कृष्णदास था। नंददास ने कई रचनाएँ- रसमंजरी, अनेकार्थमंजरी, भागवत्-दशम स्कंध, श्याम सगाई, गोवर्द्धधन लीला, सुदामा चरित, विरहमंजरी, रूप मंजरी, रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी, भँवर गीत, सिद्धांत पंचाध्यायी, नंददास पदावली हैं। उनकी धर्मपत्नी का नाम हुलसी था। संवत् 1511 के श्रावण मास के शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि के दिन अभुक्त मूल नक्षत्र में इन्हीं दम्पति के यहाँ तुलसीदास का जन्म हुआ। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार शिशु बारह महीने तक माँ के गर्भ में रहने के कारण अत्यधिक हृष्ट पुष्ट था और उसके मुख में दाँत दिखायी दे रहे थे। जन्म लेने के साथ ही उसने राम नाम का उच्चारण किया जिससे उसका नाम रामबोला पड़ गया। उनके जन्म के दूसरे ही दिन माँ का निधन हो गया। पिता ने किसी और अनिष्ट से बचने के लिये बालक को चुनियाँ नाम की एक दासी को सौंप दिया और स्वयं विरक्त हो गये। जब रामबोला साढे पाँच वर्ष का हुआ तो चुनियाँ भी नहीं रही। वह **गली-गली भटकता हुआ अनाथों की तरह जीवन जीने को विवश हो गया।**

बचपन

भगवान शंकरजी की प्रेरणा से रामशैल पर रहनेवाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य श्रीनरहर्यानन्द जी (नरहरि बाबा) ने इस रामबोला के नाम से बहुचर्चित हो चुके इस बालक को ढूँढ निकाला और विधिवत उसका नाम तुलसीराम रखा। तदुपरान्त वे उसे अयोध्या (उत्तर प्रदेश) ले गये और वहाँ संवत 1561 माघ शुक्ला पंचमी (शुक्रवार) को उसका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न कराया। संस्कार के समय भी बिना सिखाये ही बालक रामबोला ने गायत्री-मन्त्र का स्पष्ट उच्चारण किया, जिसे देखकर सब लोग चकित हो गये। इसके बाद नरहरि बाबा ने वैष्णवों के पाँच संस्कार करके बालक को राम-मन्त्र की दीक्षा दी और अयोध्या में ही रहकर उसे विद्याध्ययन कराया। बालक रामबोला की बुद्धि बड़ी प्रखर थी। वह एक ही बार में गुरु-मुख से जो सुन लेता, उसे वह कंठस्थ हो जाता। वहाँ से कुछ काल के बाद गुरु-शिष्य दोनों शूकरक्षेत्र (सोरों)

पहुँचे। वहाँ नरहरि बाबा ने बालक को राम-कथा सुनायी किन्तु वह उसे भली-भाँति समझ न आयी।

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी, गुरुवार, संवत् 1583 को 29 वर्ष की आयु में राजापुर से थोडी ही दूर यमुना के उस पार स्थित एक गाँव की अति सुन्दरी भारद्वाज गोत्र की कन्या रत्नावली के साथ उनका विवाह हुआ। चूँकि गौना नहीं हुआ था अत: कुछ समय के लिये वे काशी चले गये और वहाँ शेषसनातन जी के पास रहकर वेद-वेदांग के अध्ययन में जुट गये। वहाँ रहते हुए अचानक एक दिन उन्हें अपनी पत्नी की याद आयी और वे व्याकुल होने लगे। जब नहीं रहा गया तो गुरूजी से आज्ञा लेकर वे अपनी जन्मभूमि राजापुर लौट आये। पत्नी रत्नावली चूँकि मायके में ही थी क्योंकि तब तक उनका गौना नहीं हुआ था अत: तुलसीराम ने भयंकर अँधेरी रात में उफनती यमुना नदी तैरकर पार की और सीधे अपनी पत्नी के शयन-कक्ष में जा पहुँचे। रत्नावली इतनी रात गये अपने पति को अकेले आया देख कर आश्चर्यचकित हो गयी। उसने लोक-लज्जा के भय से जब उन्हें चुपचाप वापस जाने को कहा तो वे उससे उसी समय घर चलने का आग्रह करने लगे। उनकी इस अप्रत्याशित जिद से खीझकर रत्नावली ने स्वरचित एक दोहे के माध्यम से जो शिक्षा उन्हें दी उसने ही तुलसीराम को तुलसीदास बना दिया। रत्नावली ने जो दोहा कहा था वह इस प्रकार है–

अस्थि चर्म मय देह यह, ता सों ऐसी प्रीति !
नेकु जो होती राम से, तो काहे भव-भीत ?

यह दोहा सुनते ही उन्होंने उसी समय पत्नी को वहीं उसके पिता के घर छोड़ दिया और वापस अपने गाँव राजापुर लौट गये। राजापुर में अपने घर जाकर जब उन्हें यह पता चला कि उनकी अनुपस्थिति में उनके पिता भी नहीं रहे और पूरा घर नष्ट हो चुका है तो उन्हें और भी अधिक कष्ट हुआ। उन्होंने विधि-विधान पूर्वक अपने पिता जी का श्राद्ध किया और गाँव में ही रहकर लोगों को भगवान राम की कथा सुनाने लगे।

भगवान श्री राम जी से भेंट

कुछ काल राजापुर रहने के बाद वे पुन: काशी चले गये और वहाँ की जनता को राम-कथा सुनाने लगे। कथा के दौरान उन्हें एक दिन मनुष्य के वेष में एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान जी का पता बतलाया। हनुमान जी से मिलकर तुलसीदास ने उनसे श्रीरघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की।

हनुमानजी ने कहा- 'तुम्हें चित्रकूट में रघुनाथजी के दर्शन होंगें।' इस पर तुलसीदास जी चित्रकूट की ओर चल पड़े।

चित्रकूट पहुँच कर उन्होंने रामघाट पर अपना आसन जमाया। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने निकले ही थे कि यकायक मार्ग में उन्हें श्रीराम के दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार घोड़ों पर सवार होकर धनुष-बाण लिये जा रहे हैं। तुलसीदास उन्हें देखकर आकर्षित तो हुए, परन्तु उन्हें पहचान न सके। तभी पीछे से हनुमान्जी ने आकर जब उन्हें सारा भेद बताया तो वे पश्चाताप करने लगे। इस पर हनुमान्जी ने उन्हें सात्वना दी और कहा प्रात:काल फिर दर्शन होंगे।

संवत 1607 की मौनी अमावस्या को बुधवार के दिन उनके सामने भगवान श्रीराम जी पुन: प्रकट हुए। उन्होंने बालक रूप में आकर तुलसीदास से कहा-बाबा! हमें चन्दन चाहिये क्या आप हमें चन्दन दे 'सकते हैं?' हनुमान जी ने सोचा, कहीं वे इस बार भी धोखा न खा जायें, इसलिये उन्होंने तोते का रूप धारण करके यह दोहा कहा–

चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुबीर

तुलसीदास भगवान श्री राम जी की उस अद्भुत छवि को निहार कर अपने शरीर की सुध-बुध ही भूल गये। अन्ततोगत्वा भगवान ने स्वयं अपने हाथ से चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदास जी के मस्तक पर लगाया और अन्तर्ध्यान हो गये।

संस्कृत में पद्य-रचना

संवत् 1628 में वह हनुमान जी की आज्ञा लेकर अयोध्या की ओर चल पड़े। उन दिनों प्रयाग में माघ मेला लगा हुआ था। वे वहाँ कुछ दिन के लिये ठहर गये। पर्व के छ: दिन बाद एक वटवृक्ष के नीचे उन्हें भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन हुए। वहाँ उस समय वही कथा हो रही थी, जो उन्होने सूकरक्षेत्र में अपने गुरू से सुनी थी। माघ मेला समाप्त होते ही तुलसीदास जी प्रयाग से पुन: वापस काशी आ गये और वहाँ के प्रह्लादघाट पर एक ब्राह्मण के घर निवास किया। वहीं रहते हुए उनके अन्दर कवित्व-शक्ति का प्रस्फुरण हुआ और वे संस्कृत में पद्य-रचना करने लगे। परन्तु दिन में वे जितने पद्य रचते, रात्रि में वे सब लुप्त हो जाते। यह घटना रोज घटती। आठवें दिन तुलसीदास जी को

स्वप्न हुआ। भगवान शंकर ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा में काव्य रचना करो। तुलसीदास जी की नींद उचट गयी। वे उठकर बैठ गये। उसी समय भगवान शिव और पार्वती उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदास जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। इस पर प्रसन्न होकर शिव जी ने कहा- 'तुम अयोध्या में जाकर रहो और हिन्दी में काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी।' इतना कहकर गौरीशंकर अन्तर्धान हो गये। तुलसीदास जी उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर काशी से सीधे अयोध्या चले गये।

रामचरितमानस की रचना

संवत 1631 का प्रारम्भ हुआ। दैवयोग से उस वर्ष रामनवमी के दिन वैसा ही योग आया जैसा त्रेतायुग में राम-जन्म के दिन था। उस दिन प्रातःकाल तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस की रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष, सात महीने और छ्ब्बीस दिन में यह अद्‌भुत ग्रन्थ सम्पन्न हुआ। संवत 1633 के मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में राम-विवाह के दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

तुलसीदास पर भारत सरकार द्वारा जारी डाक टिकट

इसके बाद भगवान की आज्ञा से तुलसीदास जी काशी चले आये। वहाँ उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को श्रीरामचरितमानस सुनाया। रात को पुस्तक विश्वनाथ-मन्दिर में रख दी गयी। प्रातःजब मन्दिर के पट खोले गये तो पुस्तक पर लिखा हुआ पाया गया-सत्यं शिवं सुन्दरम् जिसके नीचे भगवान शंकर की सही (पुष्टि) थी। उस समय वहाँ उपस्थित लोगों ने 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की आवाज भी कानों से सुनी।

इधर काशी के पण्डितों को जब यह बात पता चली तो उनके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वे दल बनाकर तुलसीदास जी की निन्दा और उस पुस्तक को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने पुस्तक चुराने के लिये दो चोर भी भेजे। चोरों ने जाकर देखा कि तुलसीदास जी की कुटी के आसपास दो युवक धनुषबाण लिये पहरा दे रहे हैं। दोनों युवक बड़े ही सुन्दर क्रमशः श्याम और गौर वर्ण के थे। उनके दर्शन करते ही चोरों की बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्होंने उसी समय से चोरी करना छोड़ दिया और भगवान के भजन में लग गये। तुलसीदास जी ने अपने लिये भगवान को कष्ट हुआ जान कुटी का सारा समान लुटा दिया और पुस्तक अपने मित्र टोडरमल (अकबर के नौरत्नों में एक) के यहाँ रखवा दी।

इसके बाद उन्होंने अपनी विलक्षण स्मरण शक्ति से एक दूसरी प्रति लिखी। उसी के आधार पर दूसरी प्रतिलिपियाँ तैयार की गयीं और पुस्तक का प्रचार दिनों-दिन बढ़ने लगा।

इधर काशी के पण्डितों ने और कोई उपाय न देख श्री मधुसूदन सरस्वती नाम के महापण्डित को उस पुस्तक को देखकर अपनी सम्मति देने की प्रार्थना की। मधुसूदन सरस्वती जी ने उसे देखकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और उस पर अपनी ओर से यह टिप्पणी लिख दी-

आनन्दकानने ह्यास्मिंजंगमस्तुलसीतरुः।
कवितामंजरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

इसका हिन्दी में अर्थ इस प्रकार है-'काशी के आनन्द-वन में तुलसीदास साक्षात् चलता-फिरता तुलसी का पौधा है। उसकी काव्य-मंजरी बड़ी ही मनोहर है, जिस पर श्रीराम रूपी भँवरा सदा मँडराता रहता है।'

पण्डितों को उनकी इस टिप्पणी पर भी संतोष नहीं हुआ। तब पुस्तक की परीक्षा का एक अन्य उपाय सोचा गया। काशी के विश्वनाथ-मन्दिर में भगवान विश्वनाथ के सामने सबसे ऊपर वेद, उनके नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सबके नीचे रामचरितमानस रख दिया गया। प्रातःकाल जब मन्दिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि श्रीरामचरितमानस वेदों के ऊपर रखा हुआ है। अब तो सभी पण्डित बड़े लज्जित हुए। उन्होंने तुलसीदास जी से क्षमा माँगी और भक्ति-भाव से उनका चरणोदक लिया।

मृत्यु

तुलसीदास जी जब काशी के विख्यात् घाट असीघाट पर रहने लगे तो एक रात कलियुग मूर्त रूप धारण कर उनके पास आया और उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगा। तुलसीदास जी ने उसी समय हनुमान जी का ध्यान किया। हनुमान जी ने साक्षात् प्रकट होकर उन्हें प्रार्थना के पद रचने को कहा, इसके पश्चात् उन्होंने अपनी अन्तिम कृति विनय-पत्रिका लिखी और उसे भगवान के चरणों में समर्पित कर दिया। श्रीराम जी ने उस पर स्वयं अपने हस्ताक्षर कर दिये और तुलसीदास जी को निर्भय कर दिया।

संवत 1680 में श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार को तुलसीदास जी ने 'राम-राम' कहते हुए अपना शरीर परित्याग किया।

तुलसी-स्तवन

तुलसीदास जी की हस्तलिपि अत्यधिक सुन्दर थी लगता है जैसे उस युग में उन्होंने कैलोग्राफी की कला आती थी। उनके जन्म-स्थान राजापुर के एक मन्दिर में श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड की एक प्रति सुरक्षित रखी हुई है। उसी प्रति के साथ रखे हुए एक कवि मदनलाल वर्मा 'क्रान्त' की हस्तलिपि में तुलसी के व्यक्तित्त्व व कृतित्त्व को रेखांकित करते हुए निम्नलिखित दो छन्द भी उल्लेखनीय हैं जिन्हें हिन्दी अकादमी दिल्ली की पत्रिका इन्द्रप्रस्थ भारती ने सर्वप्रथम प्रकाशित किया था। इनमें पहला छन्द सिंहावलोकन है जिसकी विशेषता यह है कि प्रत्येक चरण जिस शब्द से समाप्त होता है उससे आगे का उसी से प्रारम्भ होता है। प्रथम व अन्तिम शब्द भी एक ही रहता है। काव्यशास्त्र में इसे अद्‌भुत छन्द कहा गया है। यही छन्द एक अन्य पत्रिका साहित्यपरिक्रमा के तुलसी जयन्ती विशेषांक में भी प्रकाशित हुए थे वहीं से उद्धृत किये गये हैं

तुलसी ने मानस लिखा था जब जाति-पाँति-सम्प्रदाय-ताप से धरम-धरा झुलसी।
झुलसी धरा के तृण-संकुल पे मानस की पावसी-फुहार से हरीतिमा-सी हुलसी।
हुलसी हिये में हरि-नाम की कथा अनन्त सन्त के समागम से फूली-फली कुल-सी।
कुल-सी लसी जो प्रीति राम के चरित्र में तो राम-रस जग को चखाय गये तुलसी।
आत्मा थी राम की पिता में सो प्रताप-पुन्ज आप रूप गर्भ में समाय गये तुलसी।
जन्मते ही राम-नाम मुख से उचारि निज नाम रामबोला रखवाय गये तुलसी।
रत्नावली-सी अर्द्धांगिनी सों सीख पाय राम सों प्रगाढ प्रीति पाय गये तुलसी।
मानस में राम के चरित्र की कथा सुनाय राम-रस जग को चखाय गये तुलसी।

तुलसीदास की रचनाएँ

अपने 126 वर्ष के दीर्घ जीवन-काल में तुलसीदास ने कालक्रमानुसार निम्नलिखित कालजयी ग्रन्थों की रचनाएँ कीं -

रामललानहछू, वैराग्यसंदीपनी, रामाज्ञाप्रश्न, जानकी-मंगल, रामचरितमानस, सतसई, पार्वती-मंगल, गीतावली, विनय-पत्रिका, कृष्ण-गीतावली, बरवै रामायण, दोहावली और कवितावली।

इनमें से रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली जैसी कृतियों के विषय में किसी कवि की यह आर्षवाणी सटीक प्रतीत होती है - पश्य देवस्य काव्यं, न मृणोति न जीर्यति। अर्थात देवपुरुषों का काव्य देखिये जो न मरता न पुराना होता है।

लगभग चार सौ वर्ष पूर्व तुलसीदास जी ने अपनी कृतियों की रचना की थी। आधुनिक प्रकाशन-सुविधाओं से रहित उस काल में भी तुलसीदास का काव्य जन-जन तक पहुँच चुका था। यह उनके कवि रूप में लोकप्रिय होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। मानस जैसे वृहद् ग्रन्थ को कण्ठस्थ करके सामान्य पढ़े-लिखे लोग भी अपनी शुचिता एवं ज्ञान के लिए प्रसिद्ध होने लगे थे।

रामचरितमानस तुलसीदास जी का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। उन्होंने अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है, इसलिए प्रामाणिक रचनाओं के सम्बन्ध में अन्तःसाक्ष्य का अभाव दिखायी देता है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

1. रामचरितमानस
2. रामललानहछू
3. वैराग्य-संदीपनी
4. बरवै रामायण
5. पार्वती-मंगल
6. जानकी-मंगल
7. रामाज्ञाप्रश्न
8. दोहावली
9. कवितावली
10. गीतावली
11. श्रीकृष्ण-गीतावली
12. विनय-पत्रिका
13. सतसई
14. छंदावली रामायण
15. कुंडलिया रामायण

16. राम शलाका
17. संकट मोचन
18. करखा रामायण
19. रोला रामायण
20. झूलना
21. छप्पय रामायण
22. कवित्त रामायण
23. कलिधर्माधर्म निरूपण
24. हनुमान चालीसा

'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स' में ग्रियर्सन ने भी उपरोक्त प्रथम बारह ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

कुछ ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण

रामललानहछू

यह संस्कार गीत है। इस गीत में कतिपय उल्लेख राम-विवाह की कथा से भिन्न हैं।

गोद लिहैं कौशल्या बैठि रामहिं वर हो।
सोभित दूलह राम सीस, पर आंचर हो॥

वैराग्य संदीपनी

वैराग्य संदीपनी को माताप्रसाद गुप्त ने अप्रामाणिक माना है, पर आचार्य चंद्रवली पांडे इसे प्रामाणिक और तुलसी की आरंभिक रचना मानते हैं। कुछ और प्राचीन प्रतियों के उपलब्ध होने से ठोस प्रमाण मिल सकते हैं। संत महिमा वर्णन का पहला सोरठा पेश है -

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत।
जिन्हके विमल विवेक, सेष महेस न कहि सकत॥

बरवै रामायण

विद्वानों ने इसे तुलसी की रचना घोषित किया है। शैली की दृष्टि से यह तुलसीदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी खंडित प्रति ही ग्रंथावली में संपादित है।

पार्वती-मंगल

यह तुलसी की प्रामाणिक रचना प्रतीत होती है। इसकी काव्यात्मक प्रौढ़ता तुलसी सिद्धांत के अनुकूल है। कविता सरल, सुबोध रोचक और सरस है। 'जगत मातु पितु संभु भवानी' की श्रृंगारिक चेष्टाओं का तनिक भी पुट नहीं है। लोक रीति इतनी यथास्थिति से चित्रित हुई है कि यह संस्कृत के शिव काव्य से कम प्रभावित है और तुलसी की मति की भक्त्यात्मक भूमिका पर विरचित कथा काव्य है। व्यवहारों की सुष्ठुता, प्रेम की अनन्यता और वैवाहिक कार्यक्रम की सरसता को बड़ी सावधानी से कवि ने अंकित किया है। तुलसीदास अपनी इस रचना से अत्यन्त संतुष्ट थे, इसीलिए इस अनासक्त भक्त ने केवल एक बार अपनी मति की सराहना की है -

प्रेम पाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि।
मंगल हार रचेउ कवि मति मृगलोचनि।।

जानकी-मंगल

विद्वानों ने इसे तुलसीदास की प्रामाणिक रचनाओं में स्थान दिया है। पर इसमें भी क्षेपक है।

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए।
डाँटहि आँखि देखाइ कोप दारुन किए।।
राम कीन्ह परितोष रोस रिस परिहरि।
चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि।।
रघुबर भुजबल देख उछाह बरातिन्ह।
मुदित राउ लखि सन्मुख विधि सब भाँतिन्ह।।

तुलसी के मानस के पूर्व वाल्मीकीय रामायण की कथा ही लोक प्रचलित थी। काशी के पंडितों से मानस को लेकर तुलसीदास का मतभेद और मानस की प्रति पर विश्वनाथ का हस्ताक्षर संबंधी जनश्रुति प्रसिद्ध है।

रामाज्ञा प्रश्न

यह ज्योतिष शास्त्रीय पद्धति का ग्रंथ है। दोहों, सप्तकों और सर्गों में विभक्त यह ग्रंथ रामकथा के विविध मंगल एवं अमंगलमय प्रसंगों की मिश्रित रचना है। काव्य की दृष्टि से इस ग्रंथ का महत्त्व नगण्य है। सभी इसे तुलसीकृत

मानते हैं। इसमें कथा-शृंखला का अभाव है और वाल्मीकीय रामायण के प्रसंगों का अनुवाद अनेक दोहों में है।

दोहावली

दोहावली में अधिकांश दोहे मानस के हैं। कवि ने चातक के व्याज से दोहों की एक लंबी शृंखला लिखकर भक्ति और प्रेम की व्याख्या की है। दोहावली दोहा संकलन है। मानस के भी कुछ कथा निरपेक्ष दोहों को इसमें स्थान है। संभव है कुछ दोहे इसमें भी प्रक्षिप्त हों, पर रचना की अप्रामाणिकता असंदिग्ध है।

कवितावली

कवितावली तुलसीदास की रचना है, पर सभा संस्करण अथवा अन्य संस्करणों में प्रकाशित यह रचना पूरी नहीं प्रतीत होती है। कवितावली एक प्रबंध रचना है। कथानक में अप्रासंगिकता एवं शिथिलता तुलसी की कला का कलंक कहा जायेगा।

गीतावली

गीतावली में गीतों का आधार विविध कांड का रामचरित ही रहा है। यह ग्रंथ रामचरितमानस की तरह व्यापक जनसम्पर्क में कम गया प्रतीत होता है। इसलिए इन गीतों में परिवर्तन-परिवर्द्धधन दृष्टिगत नहीं होता है। गीतावली में गीतों के कथा - संदर्भ तुलसी की मति के अनुरूप हैं। इस दृष्टि से गीतावली का एक गीत लिया जा सकता है -

कैकेयी जौ लौं जियत रही।
तौ लौं बात मातु सों मुह भरि भरत न भूलि कही।।
मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गँसन गही।
सीय लखन रिपुदवन राम-रुख लखि सबकी निबही।।
लोक-बेद-मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही।।

इसमें भरत और राम के शील का उत्कर्ष तुलसीदास ने व्यक्त किया है। गीतावली के उत्तरकांड में मानस की कथा से अधिक विस्तार है। इसमें सीता का वाल्मीकि आश्रम में भेजा जाना वर्णित है। इस परित्याग का औचित्य निर्देश इन पंक्तियों में मिलता है -

भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ।
परिहरे बिनु जानकी नहीं और अनघ उपाउ॥
पालिबे असिधार-ब्रत प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ।
होइ हित केहि भांति, नित सुविचारु नहिं चित चाउ॥

श्रीकृष्ण गीतावली

श्रीकृष्ण गीतावली भी गोस्वामीजी की रचना है। श्रीकृष्ण-कथा के कतिपय प्रकरण गीतों के विषय हैं।

हनुमानबाहुक

यह गोस्वामी जी की हनुमत-भक्ति संबंधी रचना है। पर यह एक स्वतंत्र रचना है। इसके सभी अंश प्रामाणिक प्रतीत होते हैं।

तुलसीदास को राम प्यारे थे, राम की कथा प्यारी थी, राम का रूप प्यारा था और राम का स्वरूप प्यारा था। उनकी बुद्धि, राग, कल्पना और भावुकता पर राम की मर्यादा और लीला का आधिपत्य था। उनकी आंखों में राम की छवि बसती थी। सब कुछ राम की पावन लीला में व्यक्त हुआ है, जो रामकाव्य की परम्परा की उच्चतम उपलब्धि है। निर्दिष्ट ग्रंथों में इसका एक रस प्रतिबिंब है।

तुलसीदास के जीवन की ऐतिहासिक घटनाएं

तुलसीदास के जीवन की कुछ घटनाएं एवं तिथियां भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। कवि के जीवन-वृत्त और महिमामय व्यक्तित्त्व पर उनसे प्रकाश पड़ता है।

यज्ञोपवीत

मूल गोसाईं चरित के अनुसार तुलसीदास का यज्ञोपवीत माघ शुक्ला पंचमी सं0 1561 में हुआ -

पन्द्रह सै इकसठ माघसुदी। तिथि पंचमि औ भृगुवार उदी।
सरजू तट विप्रन जग्य किए। द्विज बालक कहं उपबीत किए॥

कवि के माता - पिता की मृत्यु कवि के बाल्यकाल में ही हो गई थी।

विवाह

जनश्रुतियों एवं रामायणियों के विश्वास के अनुसार तुलसीदास विरक्त होने के पूर्व भी कथा-वाचन करते थे। युवक कथावाचक की विलक्षण प्रतिभा और दिव्य भगवद्भक्ति से प्रभावित होकर रत्नावली के पिता पं0 दीन बंधु पाठक ने एक दिन, कथा के अन्त में, श्रोताओं के विदा हो जाने पर, अपनी बारह वर्षीया कन्या उनके चरणों में सौंप दी। मूल गोसाईं चरित के अनुसार रत्नावली के साथ युवक तुलसी का यह वैवाहिक सूत्र सं0 1583 की ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी, दिन गुरुवार को जुड़ा था–

पंद्रह सै पार तिरासी विषै।
सुभ जेठ सुदी गुरु तेरसि पै।
अधिराति लगै जु फिरै भंवरी।
दुलहा दुलही की परी पंवरी॥

आराध्य-दर्शन

भक्त शिरोमणि तुलसीदास को अपने आराध्य के दर्शन भी हुए थे। उनके जीवन के वे सर्वोत्तम और महत्तम क्षण रहे होंगे। लोक-श्रुतियों के अनुसार तुलसीदास को आराध्य के दर्शन चित्रकूट में हुए थे। आराध्य युगल राम - लक्ष्मण को उन्होंने तिलक भी लगाया था -

चित्रकूट के घाट पै, भई संतन के भीर।
तुलसीदास चंदन घिसै, तिलक देत रघुबीर॥

मूल गोसाईं चरित के अनुसार कवि के जीवन की वह पवित्रतम तिथि माघ अमावस्या (बुधवार), सं0 1607 को बताया गया है।

सुखद अमावस मौनिया, बुध सोरह सै सात।
जा बैठे तिसु घाट पै, विरही होतहि प्रात॥

गोस्वामी तुलसीदास के महिमान्वित व्यक्तित्त्व और गरिमान्वित साधना को ज्योतित करने वाली एक और घटना का उल्लेख मूल गोसाईं चरित में किया गया है। तुलसीदास नंददास से मिलने बृंदावन पहुंचे। नंददास उन्हें कृष्ण मंदिर में ले गए। तुलसीदास अपने आराध्य के अनन्य भक्त थे। तुलसीदास राम और कृष्ण की तात्त्विक एकता स्वीकार करते हुए भी राम-रूप श्यामघन पर मोहित होने वाले चातक थे। अतः घनश्याम कृष्ण के समक्ष नतमस्तक कैसे होते। उनका भाव-विभोर कवि का कण्ठ मुखर हो उठा -

कहा कहौं छवि आज की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुष बान लो हाथ॥

इतिहास साक्षी दे या नहीं दे, किन्तु लोक-श्रुति साक्षी देती है कि कृष्ण की मूर्ति राम की मूर्ति में बदल गई थी।

रत्नावली का महाप्रस्थान

रत्नावली का बैकुंठगमन 'मूल गोसाई चरित' के अनुसार सं0 1589 में हुआ। किंतु राजापुर की सामग्रियों से उसके दीर्घ जीवन का समर्थन होता है।

मीराबाई का पत्र

महात्मा बेनी माधव दास ने मूल गोसाईं चरित में मीराबाई और तुलसीदास के पत्रचार का उल्लेख किया किया है। अपने परिवार वालों से तंग आकर मीराबाई ने तुलसीदास को पत्र लिखा। मीराबाई पत्र के द्वारा तुलसीदास से दीक्षा ग्रहण करनी चाही थी। मीरा के पत्र के उत्तर में विनयपत्रिका का निम्नांकित पद की रचना की गई।

जाके प्रिय न राम वैदेही
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
सो छोड़िये
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलिगुरु तज्यो कंत ब्रजबनितन्हि, भये मुद मंगलकारी।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहां लौं।
अंजन कहां आंखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहां लौं।
तुलसी सो सब भांति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों हाय सनेह राम-पद, एतोमतो हमारो॥

तुलसीदास ने मीराबाई को भक्ति-पथ के बाधकों के परित्याग का परामर्श दिया था।

केशवदास से संबद्ध घटना

मूल गोसाईं चरित के अनुसार केशवदास गोस्वामी तुलसीदास से मिलने काशी आए थे। उचित सम्मान न पा सकने के कारण वे लौट गए।

अकबर के दरबार में बंदी बनाया जाना

तुलसीदास की ख्याति से अभिभूत होकर अकबर ने तुलसीदास को अपने दरबार में बुलाया और कोई चमत्कार प्रदर्शित करने को कहा। यह प्रदर्शन-प्रियता तुलसीदास की प्रकृति और प्रवृत्ति के प्रतिकूल थी, अतः ऐसा करने से उन्होंने इनकार कर दिया। इस पर अकबर ने उन्हें बंदी बना लिया। तदुपरांत राजधानी और राजमहल में बंदरों का अभूतपूर्व एवं अद्‌भुत उपद्रव शुरु हो गया। अकबर को बताया गया कि यह हनुमान जी का क्रोध है। अकबर को विवश होकर तुलसीदास को मुक्त कर देना पड़ा।

जहांगीर को तुलसी-दर्शन

जिस समय वे अनेक विरोधों का सामना कर सफलताओं और उपलब्धियों के सर्वोच्च शिखर का स्पर्श कर रहे थे, उसी समय दर्शनार्थ जहांगीर के आने का उल्लेख किया गया मिलता है।

दांपत्य जीवन

सुखद दांपत्य जीवन का आधार अर्थ प्राचुर्य नहीं, पति-पत्नि का पारस्परिक प्रेम, विश्वास और सहयोग होता है। तुलसीदास का दांपत्य जीवन आर्थिक विपन्नता के बावजूद संतुष्ट और सुखी था। भक्तमाल के प्रियादास की टीका से पता चलता है कि जीवन के वसंत काल में तुलसी पत्नी के प्रेम में सराबोर थे। पत्नी का वियोग उनके लिए असह्य था। उनकी पत्नी-निष्ठा दिव्यता को उल्लंघित कर वासना और आसक्ति की ओर उन्मुख हो गई थी।

रत्नावली के मायके चले जाने पर शव के सहारे नदी को पार करना और सर्थ के सहारे दीवाल को लांघकर अपने पत्नी के निकट पहुंचना। पत्नी की फटकार ने भोगी को जोगी, आसक्त को अनासक्त, गृहस्थ को सन्यासी और भांग को भी तुलसीदल बना दिया। वासना और आसक्ति के चरम सीमा पर आते ही उन्हें दूसरा लोक दिखाई पड़ने लगा। इसी लोक में उन्हें मानस और विनयपत्रिका जैसी उत्कृष्टतम रचनाओं की प्रेरणा और सिसृक्षा मिली।

वैराग्य की प्रेरणा

तुलसीदास के वैराग्य ग्रहण करने के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम, अतिशय आसक्ति और वासना की प्रतिक्रिया और दूसरा, आर्थिक विपन्नता। पत्नी

की फटकार ने उनके मन के समस्त विकारों को दूर कर दिया। दूसरे कारण विनयपत्रिका के निम्नांकित पदांशों से प्रतीत होता है कि आर्थिक संकटों से परेशान तुलसीदास को देखकर सन्तों ने भगवान राम की शरण में जाने का परामर्श दिया–

दुखित देखि संतन कह्यो, सोचौ जनि मन मोहूं
तो से पसु पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर निबाहूं।।
तुलसी तिहारो भये भयो सुखी प्रीति-प्रतीति विनाहू।
नाम की महिमा, सीलनाथ को, मेरो भलो बिलोकि, अबतें।।

रत्नावली ने भी कहा था कि इस अस्थि – चर्ममय देह में जैसी प्रीति है, ऐसी ही प्रीति अगर भगवान राम में होती तो भव-भीति मिट जाती। इसीलिए वैराग्य की मूल प्रेरणा भगवदाराधन ही है।

तुलसी का निवास-स्थान

विरक्त हो जाने के उपरांत तुलसीदास ने काशी को अपना मूल निवास-स्थान बनाया। वाराणसी के तुलसीघाट, घाट पर स्थित तुलसीदास द्वारा स्थापित अखाड़ा, मानस और विनयपत्रिका के प्रणयन-कक्ष, तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त होने वाली नाव के शेषांग, मानस की 1704 ई0 की पांडुलिपि, तुलसीदास की चरण-पादुकाएं आदि से पता चलता है कि तुलसीदास के जीवन का सर्वाधिक समय यहीं बीता। काशी के बाद कदाचित् सबसे अधिक दिनों तक अपने आराध्य की जन्मभूमि अयोध्या में रहे। मानस के कुछ अंश का अयोध्या में रचा जाना इस तथ्य का पुष्कल प्रमाण है।

तीर्थाटन के क्रम में वे प्रयाग, चित्रकूट, हरिद्वार आदि भी गए। बालकांड के 'ष्दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि-भरि कांवर चले कहारा' तथा 'सूखत धान परा जनु पानी' से उनका मिथिला-प्रवास भी सिद्ध होता है। धान की खेती के लिए भी मिथिला ही प्राचीन काल से प्रसिद्ध रही है। धान और पानी का संबंध-ज्ञान बिना मिथिला में रहे तुलसीदास कदाचित् व्यक्त नहीं करते। इससे भी साबित होता है कि वे मिथिला में रहे।

विरोध और सम्मान

जनश्रुतियों और अनेक ग्रंथों से पता चलता है कि तुलसीदास को काशी के कुछ अनुदार पंडितों के प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा था। उन पंडितों

ने रामचरितमानस की पांडुलिपि को नष्ट करने और हमारे कवि के जीवन पर संकट ढालने के भी प्रयास किए थे। जनश्रुतियों से यह भी पता चलता है कि रामचरितमानस की विमलता और उदात्तता के लिए विश्वनाथ जी के मन्दिर में उनकी पांडुलिपि रखी गई थी और भगवान विश्वनाथ का समर्थन मानस को मिला था। अन्ततः, विरोधियों को तुलसी के सामने नतमस्तक होना पड़ा था। विरोधों का शमन होते ही कवि का सम्मान दिव्य-गंध की तरह बढ़ने और फैलने लगा। कवि के बढ़ते हुए सम्मान का साक्ष्य कवितावली की निम्नांकित पंक्तियां भी देती हैं -

जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागिबस
खाए टूक सबके विदित बात दुनी सो।
मानस वचनकाय किए पाप सति भाय
राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो।
राम नाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप
तुलसी से जग मानियत महामुनी सो।
अति ही अभागो अनुरागत न राम पद
मूढ़ एतो बढ़ो अचरज देखि सुनी सो॥
(कवितावली, उत्तर, 72)

तुलसी अपने जीवन-काल में ही वाल्मीकि के अवतार माने जाने लगे थे-

त्रेता काव्य निबंध करिव सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन॥
पुनि भक्तन सुख देन बहुरि लीला विस्तारी।
राम चरण रस मत्त रहत अहनिसि व्रतधारी।
संसार अपार के पार को सगुन रुप नौका लिए।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भए॥
(भक्तमाल, छप्पय 129)

पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान और दार्शनिक श्री मधुसूदन सरस्वती को तुलसीदास का समसामयिक बताया है। उनके साथ उनके वादविवाद का उल्लेख किया है और मानस तथा तुलसी की प्रशंसा में लिखा उनका 'श्लोक भी उद्घृत किया है। उस श्लोक से भी तुलसीदास की प्रशस्ति का पता मालूम होता है।

आनन्दकाननेह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरु–
कविता मंजरी यस्य, राम-भ्रमर भूषिता।

जीवन की सांध्य वेला

तुलसीदास को जीवन की सांध्य वेला में अतिशय शारीरिक कष्ट हुआ था। तुलसीदास बाहु की पीड़ा से व्यथित हो उठे तो असहाय बालक की भांति आराध्य को पुकारने लगे थे।

घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यौं,
बासर जलद घन घटा धुकि धाई है।
बरसत बारि पोर जारिये जवासे जस,
रोष बिनु दोष, धूम-मूलमलिनाई है॥
करुनानिधान हनुमान महा बलबान,
हेरि हैसि हांकि फूंकि फौजें तै उड़ाई है।
खाए हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि,
केसरी किसोर राखे बीर बरिआई है।
(हनुमान बाहुक, 35)

निम्नांकित पद से तीव्र पीड़ारुभूति और उसके कारण शरीर की दुर्दशा का पता चलता हैं –

पायेंपीर पेटपीर बांहपीर मुंहपीर
जर्जर सकल सरी पीर मई है।
देव भूत पितर करम खल काल ग्रह,
मोहि पर दवरि दमानक सी दई है॥
हौं तो बिन मोल के बिकानो बलि बारे हीं तें,
ओट राम नाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के निकट बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय राम रा ऐरती हाल कहुं भई है॥

दोहावली के तीन दोहों में बाहु-पीड़ा की अनुभूति –

तुलसी तनु सर सुखजलज, भुजरुज गज बर जोर।
दलत दयानिधि देखिए, कपिकेसरी किसोर॥
भुज तरु कोटर रोग अहि, बरबस कियो प्रबेस।

बिहगराज बाहन तुरत, काढिअ मिटे कलेस॥
बाहु विटप सुख विहंग थलु, लगी कुपीर कुआगि।
राम कृपा जल सींचिए, बेगि दीन हित लागि॥

आजीवन काशी में भगवान विश्वनाथ का राम कथा का सुधापान कराते-कराते असी गंग के तीर पर सं0 1680 की श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन तुलसीदास पांच भौतिक शरीर का परित्याग कर शाश्वत यश:शरीर में प्रवेश कर गए।

5

शंकरदेव

श्रीमन्त शंकरदेव (असमिया) असमिया भाषा के अत्यंत प्रसिद्ध कवि, नाटककार तथा हिन्दू समाजसुधारक थे।

जीवनचरित

श्रीमंत शंकरदेव का जन्म असम के नौगाँव जिले की बरदौवा के समीप अलिपुखुरी में हुआ। इनकी जन्मतिथि अब भी विवादास्पद है, यद्यपि प्रायः यह 1371 शक मानी जाती है। जन्म के कुछ दिन पश्चात् इनकी माता सत्यसंध्या का निधन हो गया। 21 वर्ष की उम्र में सूर्यवती के साथ इनका विवाह हुआ। मनु कन्या के जन्म के पश्चात् सूर्यवती परलोकगामिनी हुई।

शंकरदेव ने 32 वर्ष की उम्र में विरक्त होकर प्रथम तीर्थयात्रा आरंभ की और उत्तर भारत के समस्त तीर्थों का दर्शन किया। रूप और सनातन गोस्वामी से भी शंकर का साक्षात्कार हुआ था। तीर्थयात्र से लौटने के पश्चात् शंकरदेव ने 54 वर्ष की उम्र में कालिंदी से विवाह किया। तिरहुतिया ब्राह्मण जगदीश मिश्र ने बरदौवा जाकर शंकरदेव को भागवत सुनाई तथा यह ग्रंथ उन्हें भेंट किया। शंकरदेव ने जगदीश मिश्र के स्वागतार्थ 'महानाट' के अभिनय का आयोजन किया। इसके पूर्व 'चिह्लयात्र' की प्रशंसा हो चुकी थी। शंकरदेव ने 1438 शक में भुइयाँ राज्य का त्याग कर अहोम राज्य में प्रवेश किया। कर्मकांडी विप्रों ने शंकरदेव के भक्ति प्रचार का घोर विरोध किया। दिहिगिया राजा से ब्राह्मणों ने

प्रार्थना की कि शंकर वेदविरुद्ध मत का प्रचार कर रहा है। कतिपय प्रश्नोत्तर के पश्चात् राजा ने इन्हें निर्दोष घोषित किया। हाथीधरा कांड के पश्चात् शंकरदेव ने अहोम राज्य को भी छोड़ दिया। पाटवाउसी में 18 वर्ष निवास करके इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की। 97 वर्ष की अवस्था में इन्होंने दूसरी बार तीर्थयात्रा आरंभ की। उन्होंने कबीर के मठ का दर्शन किया तथा अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। इस यात्रा के पश्चात् वे बरपेटा वापस चले आए। कोच राजा नरनारायण ने शंकरदेव को आमंत्रित किया। कूचबिहार में 1490 शक में वे वैकुंठगामी हुए।

शंकरदेव के वैष्णव संप्रदाय का मत एक शरण है। इस धर्म में मूर्तिपूजा की प्रधानता नहीं है। धार्मिक उत्सवों के समय केवल एक पवित्र ग्रंथ चौकी पर रख दिया जाता है, इसे ही नैवेद्य तथा भक्ति निवेदित की जाती है। इस संप्रदाय में दीक्षा की व्यवस्था नहीं है।

रचनाएँ

काव्य

हरिश्चन्द्र उपाख्यान
अजामिल उपाख्यान
रुक्मिणी हरण काव्य
बलिछलन
अमृत मन्थन
गजेन्द्र उपाख्यान
कुरुक्षेत्र
गोपी-उद्धव संवाद
कृष्ण प्रयाण - पाण्डव निर्वारण

भक्तितत्त्व प्रकाशक ग्रन्थ

भक्ति प्रदीप
भक्ति रत्नाकर (संस्कृत में)
निमि-नवसिद्ध संवाद
अनादि पातन
अनुवादमूलक ग्रन्थ

भागवत प्रथम, द्वितीय
दशम स्कन्धर आदिछोवा
द्वाबादश स्कन्ध
रामायणर उत्तरकाण्ड

नाटक

पत्नी प्रसाद
कालियदमन
केलिगोपाल
रुक्मिणीहरण
पारिजात हरण
राम विजय

गीत

बरगीतढतमझिबिपुलज्योति डट इन
भटिमा (देवभटिमा, नाटभटिमा, राजभटिमा)
टोटय
चपय

नाम-प्रसंग ग्रन्थ

कीर्तन
गुणमाला

मार्कण्डेयपुराण के आधार पर शंकरदेव ने 615 छंदों का हरिश्चंद्र उपाख्यान लिखा।

भक्तिप्रदीप में भक्तिपरक 308 छंद हैं। इसकी रचना का आधार गरुड़पुराण है।

हरिवंश तथा भागवतपुराण की मिश्रित कथा के सहारे इन्होंने रुक्मिणीहरण काव्य की रचना की।

शंकरकृत कीर्तनघोषा में ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण तथा भागवतपुराण के विविध प्रसंगों का वर्णन है।

वामनपुराण तथा भागवत के प्रसंगों द्वारा अनादिपतनं की रचना हुई।

अजामिलोपाख्यान 426 छंदों की रचना है।

अमृतमंथन तथा बलिछलन का निर्माण अष्टम स्कंध की दो कथाओं से हुआ है।

आदिदशम कवि की अत्यंत लोकप्रिय रचना है जिसमें कृष्ण की बाललीला के विविध प्रसंग चित्रित हुए हैं।

कुरुक्षेत्र तथा निमिमनसिद्धसंवाद और गुणमाला उनकी अन्य रचनाएँ हैं।

उत्तरकाण्ड रामायण का छंदोबद्ध अनुवाद उन्होंने किया।

विप्रपत्नीप्रसाद, कालिदमनयात्र, केलिगोपाल, रुक्मिणीहरण नाटक, पारिजात हरण, रामविजय आदि नाटकों का निर्माण शंकरदेव ने किया।

असमिया वैष्णवों के पवित्र ग्रंथ भक्तिरत्नाकर की रचना इन्होंने संस्कृत में की। इसमें संप्रदाय के धार्मिक सिद्धांतों का निरूपण हुआ है।

6

वल्लभाचार्य

श्रीवल्लभाचार्यजी (1479–1531) भक्तिकालीन सगुणधारा की कृष्णभक्ति शाखा के आधारस्तंभ एवं पुष्टिमार्ग के प्रणेता थे। उनका प्रादुर्भाव विक्रम संवत् 1535, वैशाख कृष्ण एकादशी को दक्षिण भारत के कांकरवाड ग्रामवासी तैलंग ब्राह्मण श्रीलक्ष्मणभट्टजी की पत्नी इलम्मागारू के गर्भ से हुआ। यह स्थान वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य के रायपुर के निकट चम्पारण्य है। उन्हें वैश्वानरावतार (अग्नि का अवतार) कहा गया है। वे वेदशास्त्र में पारंगत थे।

महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्मान में भारत सरकार ने सन 1977 में एक रुपये मूल्य का एक डाक टिकट जारी किया था।

दीक्षा

श्रीरूद्रसंप्रदाय के श्रीविल्वमंगलाचार्यजी द्वारा इन्हें अष्टादशाक्षर गोपालमन्त्र की दीक्षा दी गई। त्रिदण्ड सन्यास की दीक्षा स्वामी नारायणेन्द्रतीर्थ से प्राप्त हुई। विवाह पंडित श्रीदेवभट्टजी की कन्या– महालक्ष्मी से हुआ और यथासमय दो पुत्र हुए– श्री गोपीनाथ व श्रीविट्ठलनाथ। भगवत्प्रेरणावश वे ब्रज में गोकुल पहुंचे और तदनन्तर ब्रजक्षेत्र स्थित गोवर्द्धन पर्वत पर अपनी गद्दी स्थापित कर शिष्य पूरनमल खत्री के सहयोग से उन्होंने संवत् 1576 में श्रीनाथ जी के भव्य मंदिर का निर्माण कराया। वहां विशिष्ट सेवा–पद्धति के साथ लीला–गान के अंतर्गत

श्रीराधाकृष्ण की मधुरातिमधुर लीलाओं से संबंधित रसमय पदों की स्वर-लहरी का अवगाहन कर भक्तजन निहाल हो जाते।

मत

श्रीवल्लभाचार्यजी के मतानुसार तीन स्वीकार्य तत्त्व हैं- ब्रह्म, जगत् और जीव। ब्रह्म के तीन स्वरूप वर्णित हैं- आधिदैविक, आध्यात्मिक एवं अंतर्यामी रूप। अनंत दिव्य गुणों से युक्त पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म स्वीकारते हुए उनके मधुर रूप एवं लीलाओं को ही जीव में आनंद के आविर्भाव का स्रोत माना गया है। जगत् ब्रह्म की लीला का विलास है। संपूर्ण सृष्टि लीला के निमित्त ब्रह्म की आत्म-कृति है।

सिद्धान्त

भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह को पुष्टि कहा गया है। भगवान के इस विशेष अनुग्रह से उत्पन्न होने वाली भक्ति को 'पुष्टिभक्ति' कहा जाता है। जीवों के तीन प्रकार हैं- पुष्टि जीव जो भगवान के अनुग्रह पर निर्भर रहते हुए नित्यलीला में प्रवेश के अधिकारी बनते हैं), मर्यादा जीव जो वेदोक्त विधियों का अनुसरण करते हुए भिन्न-भिन्न लोक प्राप्त करते हैं, और प्रवाह जीव जो जगत्-प्रपंच में ही निमग्न रहते हुए सांसारिक सुखों की प्राप्ति हेतु सतत् चेष्टारत रहते हैं, ।

भगवान् श्रीकृष्ण भक्तों के निमित्त व्यापी वैकुण्ठ में जो विष्णु के वैकुण्ठ से ऊपर स्थित है, नित्य क्रीड़ाएं करते हैं। इसी व्यापी वैकुण्ठ का एक खण्ड है- गोलोक, जिसमें यमुना, वृन्दावन, निकुंज व गोपियां सभी नित्य विद्यमान हैं। भगवद्सेवा के माध्यम से वहां भगवान की नित्य लीला-सृष्टि में प्रवेश ही जीव की सर्वोत्तम गति है।

प्रेमलक्षणा भक्ति उक्त मनोरथ की पूर्ति का मार्ग है, जिस ओर जीव की प्रवृत्ति मात्र भगवद्नुग्रह द्वारा ही संभव है। श्री मन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के पुष्टिमार्ग अनुग्रह मार्ग, का यही आधारभूत सिद्धांत है। पुष्टि-भक्ति की तीन उत्तरोत्तर अवस्थाएं हैं-प्रेम, आसक्ति और व्यसन। मर्यादा-भक्ति में भगवद्प्राप्ति शमदमादि साधनों से होती है, किंतु पुष्टि-भक्ति में भक्त को किसी साधन की आवश्यकता न होकर मात्र भगवद्कृपा का आश्रय होता है। मर्यादा-भक्ति स्वीकार्य करते हुए भी पुष्टि-भक्ति ही श्रेष्ठ मानी गई है। यह भगवान में मन की निरंतर स्थिति है। पुष्टिभक्ति का लक्षण यह है कि भगवान के स्वरूप की

प्राप्ति के अतिरिक्त भक्त अन्य किसी फल की आकांक्षा ही न रखे। पुष्टिमार्गीय जीव की सृष्टि भगवत्सेवार्थ ही है- भगवद्रूप सेवार्थ तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत्। प्रेमपूर्वक भगवत्सेवाभक्ति का यथार्थ स्वरूप है-भक्तिश्च प्रेमपूर्विकासेवा। भागवतीय आधार (कृष्णस्तु भगवान स्वयं) पर भगवान कृष्ण ही सदा सर्वदासेव्य, स्मरणीय तथा कीर्तनीय हैं-

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः।
तस्मात्सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।

ब्रह्म के साथ जीव-जगत् का संबंध निरूपण करते हुए उनका मत था कि जीव ब्रह्म का सदंशसद् अंश है, जगत् भी ब्रह्म का सदंश है। अंश एवं अंशी में भेद न होने के कारण जीव-जगत् और ब्रह्म में परस्पर अभेद है। अंतर मात्र इतना है कि जीव में ब्रह्म का आनन्दांश आवृत्त रहता है, जबकि जड़ जगत में इसके आनन्दांश व चैतन्यांश दोनों ही आवृत्त रहते हैं।

श्रीशंकराचार्य के अद्वैतवाद केवलाद्वैत के विपरीत श्रीवल्लभाचार्य के अद्वैतवाद में माया का संबंध अस्वीकार करते हुए ब्रह्म को कारण और जीव-जगत् को उसके कार्य रूप में वर्णित कर तीनों शुद्ध तत्त्वों का ऐक्य प्रतिपादित किए जाने के कारण ही उक्त मत शुद्धाद्वैतवाद कहलाया (जिसके मूल प्रवर्तक आचार्य श्री विष्णुस्वामीजी हैं) ।

प्रमुख ग्रन्थ

श्री वल्लभाचार्य ने अनेक भाष्यों, ग्रंथों, नामावलियों एवं स्तोत्रों की रचना की है, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित ये सोलह सम्मिलित हैं, जिन्हें 'षोडश ग्रन्थ' के नाम से जाना जाता है-

1. यमुनाष्टक
2. बालबोध
3. सिद्धान्त मुक्तावली
4. पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद
5. सिद्धान्तरहस्य
6. नवरत्नस्तोत्र
7. अन्तःकरणप्रबोध
8. विवेकधैर्याश्रय

9. श्रीकृष्णाश्रय
10. चतु:श्लोकी
11. भक्तिवर्धिनी
12. जलभेद
13. पंचपद्यानि
14. संन्यासनिर्णय
15. निरोधलक्षण
16. सेवाफल।

आपका शुद्धाद्वैत का प्रतिपादक प्रधान दार्शनिक ग्रन्थ है – अणुभाष्य ब्रह्मसूत्र भाष्य अथवा उत्तरमीमांसा, । इनके अतिरिक्त आप द्वारा प्रणीत कई अन्य ग्रन्थ, जैसे – 'तत्त्वार्थदीपनिबन्ध', 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम', 'पत्रवलम्बन', 'पंचश्लोकी', पूर्वमीमांसाभाष्य, भागवत के दशम स्कन्ध पर सुबोधिनी टीका आदि भी प्रसिद्ध हैं। 'मधुराष्टक' स्तोत्र में आपने भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूप, गुण, चरित्र, लीला आदि के माधुर्य को अत्यंत मधुर शब्दों और भावों से निरूपित किया है।

षोडश ग्रन्थों की टीकाएँ तथा हिंदी अनुवाद

महाप्रभु वल्लभाचार्य के षोडश ग्रंथों पर श्री हरिराय जी, श्री कल्याण राय जी, श्री पुरुषोत्तम जी, श्रीरघुनाथ जी आदि अनेक विद्वानों द्वारा संस्कृत भाषा में टीकाएं उपलब्ध हैं। सर्वसाधारण के लिए भाषा की जटिलता के कारण ग्रंथों और टीकाओं के मर्म को समझना कठिन रहा है, किन्तु श्री वल्लभाचार्य के ही एक विद्वान वंशज गोस्वामी राजकुमार नृत्यगोपालजी ने प्रत्येक ग्रन्थ की समस्त टीकाओं को न केवल एक जगह संकलित किया है, बल्कि पुष्टिमार्ग के भक्तों तथा अनुयायियों के लाभ के लिए उनका हिंदी अनुवाद भी सुलभ कराया है। क्लिष्ट टीकाओं के हिंदी अनुवाद के साथ अधिक स्पष्टता के लिए उन्होंने प्रत्येक ग्रन्थ पर अपनी स्वयं की टीका भी की है। ये सभी टीकाएँ सोलह पुस्तकों के रूप में छपी हैं। निम्न तालिका में श्री वल्लभाचार्य के ग्रंथों की संग्रहीत टीकाओं के साथ ही श्री राजकुमार नृत्यगोपालजी की टीका का उल्लेख है।

चतु:श्लोकी–मध्या टीका, 2002
भक्तिवर्धिनी–संयुक्ता टीका, 2002

सिद्धान्त-रहस्यम्–दिशा टीका, 2002
अन्तःकरणप्रबोधः–अरुणा टीका, 2003
विवेकधैर्याश्रयः–आलोका टीका, 2003
कृष्णाश्रयस्तोत्रम्–संगिनी टीका, 2004
नवरत्नम्–गोपालकेतिनी टीका, 2005
निरोधलक्षणम् - मनोज्ञा टीका, 2007
सेवाफलम् - अनुस्यूता टीका, 2009
पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः–मेखला टीका, 2010
श्री यमुनाष्टकम्–श्री टीका, 2011
जलभेदः तथा पंचपद्यानि - मनोज्ञा टीका, 2011
संन्यासनिर्णयः - ज्ञापिनी टीका, 2012
बालबोधः–बोधिका टीका, 2012
सिद्धान्तमुक्तावली–प्राची टीका, 2013

शिष्य परम्परा

श्री वल्लभाचार्यजी के चौरासी शिष्यों के अलावा अनगिनत भक्त, सेवक और अनुयायी थे। उनके पुत्र श्रीविट्ठलनाथजी (गुसाईंजी) ने बाद में उनके चार प्रमुख शिष्यों - भक्त सूरदास, कृष्णदास, परमानन्द दास और कुम्भनदास, तथा अपने स्वयं के चार शिष्यों - नन्ददास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी तथा चतुर्भुजदास, जो सभी श्रेष्ठ कवि तथा कीर्तनकार भी थे, का एक समूह स्थापित किया जो 'अष्टछाप" कवि के नाम से प्रसिद्ध है। सूरदासजी की सच्ची भक्ति एवं पद-रचना की निपुणता देख अति विनयी सूरदासजी को भागवत् कथा श्रवण कराकर भगवल्लीलागान की ओर उन्मुख किया तथा उन्हें श्रीनाथजीके मन्दिर की कीर्त्तन-सेवा सौंपी। उन्हें तत्त्व ज्ञान एवं लीला भेद भी बतलाया-श्रीवल्लभगुरू तत्त्व सुनायो लीला-भेद बतायो सूरसारावली, । सूर की गुरु के प्रति निष्ठा दृष्टव्य है- भरोसो दृढ इन चरनन केरो। श्रीवल्लभ-नख-चंद्र-छटा बिनु सब जग मांझ अंधेरो श्रीवल्लभ के प्रताप से प्रमत्त कुम्भनदासजी तो सम्राट अकबर तक का मान-मर्दन करने में नहीं झिझके- परमानन्ददासजी के भावपूर्ण पद का श्रवण कर महाप्रभु कई दिनों तक बेसुध पड़े रहे। मान्यता है कि उपास्य श्रीनाथजी ने कलि-मल-ग्रसित जीवों का उद्धार हेतु श्रीवल्लभाचार्यजी को दुर्लभ

आत्म-निवेदन-मन्त्र प्रदान किया और गोकुल के ठकुरानी घाट पर यमुना महारानी ने दर्शन देकर कृतार्थ किया।

आसुरव्यामोह लीला

विक्रम संवत् 1587, आषाढ शुक्ल तृतीया (सन 1531) को उन्होंने अलौकिक रीति से इहलीला संवरण कर सदेह प्रयाण किया, जिसे 'आसुरव्यामोह लीला' कहा जाता है। वैष्णव समुदाय उनका चिरऋणी है।

7

स्वामी हरिदास

स्वामी हरिदास (अंग्रेजी) भक्त कवि, शास्त्रीय संगीतकार तथा कृष्णोपासक सखी संप्रदाय के प्रवर्तक थे, जिसे 'हरिदासी संप्रदाय' भी कहते हैं। इन्हें ललिता सखी का अवतार माना जाता है। इनकी छाप रसिक है। इनके जन्म स्थान और गुरु के विषय में कई मत प्रचलित हैं। इनका जन्म समय कुछ ज्ञात नहीं है। हरिदास स्वामी वैष्णव भक्त थे तथा उच्च कोटि के संगीतज्ञ भी थे। प्रसिद्ध गायक तानसेन इनके शिष्य थे। सम्राट अकबर इनके दर्शन करने वृंदावन गए थे। 'केलिमाल' में इनके सौ से अधिक पद संग्रहित हैं। इनकी वाणी सरस और भावुक है। ये प्रेमी भक्त थे।

जीवन परिचय

श्री बांकेबिहारीजी महाराज को वृन्दावन में प्रकट करने वाले स्वामी हरिदासजी का जन्म विक्रम सम्वत् 1535 में भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी (श्री राधाष्टमी) के ब्रह्म मुहूर्त में हुआ था। आपके पिता श्री आशुधीर जी अपने उपास्य श्रीराधा-माधव की प्रेरणा से पत्नी गंगादेवी के साथ अनेक तीर्थो की यात्र करने के पश्चात् अलीगढ जनपद की कोल तहसील में ब्रज आकर एक गांव में बस गए। हरिदास जी का व्यक्तित्त्व बड़ा ही विलक्षण था। वे बचपन से ही एकान्त-प्रिय थे। उन्हें अनासक्त भाव से भगवद्-भजन में लीन रहने से बड़ा आनंद मिलता था। हरिदासजी का कण्ठ बड़ा मधुर था और उनमें

संगीत की अपूर्व प्रतिभा थी। धीरे-धीरे उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई। उनका गांव उनके नाम से विख्यात हो गया। हरिदास जी को उनके पिता ने यज्ञोपवीत-संस्कार के उपरान्त वैष्णवी दीक्षा प्रदान की। युवा होने पर माता-पिता ने उनका विवाह हरिमति नामक परम सौंदर्यमयी एवं सद्‌गुणी कन्या से कर दिया, किंतु स्वामी हरिदास जी की आसक्ति तो अपने श्यामा-कुंजबिहारी के अतिरिक्त अन्य किसी में थी ही नहीं। उन्हें गृहस्थ जीवन से विमुख देखकर उनकी पतिव्रता पत्नी ने उनकी साधना में विन उपस्थित न करने के उद्देश्य से योगाग्नि के माध्यम से अपना शरीर त्याग दिया और उनका तेज स्वामी हरिदास के चरणों में लीन हो गया।

वृन्दावन प्रस्थान

विक्रम सम्वत् 1560 में पच्चीस वर्ष की अवस्था में हरिदास वृन्दावन पहुंचे। वहां उन्होंने निधिवन को अपनी तपोस्थली बनाया। हरिदास जी निधिवन में सदा श्यामा-कुंजबिहारी के ध्यान तथा उनके भजन में तल्लीन रहते थे। स्वामीजी ने प्रिया-प्रियतम की युगल छवि श्री बांकेबिहारीजी महाराज के रूप में प्रतिष्ठित की। हरिदासजी के ये ठाकुर आज असंख्य भक्तों के इष्टदेव हैं। वैष्णव स्वामी हरिदास को श्रीराधा का अवतार मानते हैं। श्यामा-कुंजबिहारी के नित्य विहार का मुख्य आधार संगीत है। उनके रास-विलास से अनेक राग-रागनियां उत्पन्न होती हैं। ललिता संगीत की अधिष्ठात्री मानी गई हैं। ललितावतार स्वामी हरिदास संगीत के परम आचार्य थे। उनका संगीत उनके अपने आराध्य की उपासना को समर्पित था, किसी राजा-महाराजा को नहीं। बैजूबावरा और तानसेन जैसे विश्व-विख्यात संगीतज्ञ स्वामी जी के शिष्य थे। मुगल सम्राट अकबर उनका संगीत सुनने के लिए रूप बदलकर वृन्दावन आया था। विक्रम सम्वत 1630 में स्वामी हरिदास का निकुंजवास निधिवन में हुआ।

सखी-सम्प्रदाय

स्वामी जी ने एक नवीन पंथ सखी-सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। उनके द्वारा निकुंजोपासना के रूप में श्यामा-कुंजबिहारी की उपासना-सेवा की पद्धति विकसित हुई, यह बडी विलक्षण है। निकुंजोपासना में जो सखी-भाव है, वह गोपी-भाव नहीं है। निकुंज-उपासक प्रभु से अपने लिए कुछ भी नहीं चाहता, बल्कि उसके समस्त कार्य अपने आराध्य को सुख प्रदान करने हेतु होते हैं। श्री

निकुंजबिहारी की प्रसन्नता और संतुष्टि उसके लिए सर्वोपरि होती है। राधाष्टमी के पावन पर्व में स्वामी हरिदास का पाटोत्सव (जन्मोत्सव) वृन्दावन में बड़े धूमधाम के साथ मनाया जाता है। सायंकाल मंदिर से चाव की सवारी निधिवन में स्थित उनकी समाधि पर जाती है। ऐसा माना जाता है कि ललितावतार स्वामी हरिदास की जयंती पर उनके लाडिले ठाकुर बिहारीजी महाराज उन्हें बधाई देने श्रीनिधिवन पधारते हैं। देश के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ निधिवन में स्वामीजी की समाधि के समक्ष अपना संगीत प्रस्तुत करके उनका आशीर्वाद लेते हैं।

हरिदास सम्प्रदाय

वृन्दावन के आधुनिक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सम्प्रदायों में से एक उल्लेखनीय सम्प्रदाय है, हरिदास सम्प्रदाय जिसकी संस्थापना स्वामी हरिदास द्वारा हुई थी। वृन्दावनस्थ आधुनिक मन्दिरों में विशिष्ट एक प्रख्यात मन्दिर है, जो श्री बाँके बिहारी जी के मन्दिर के नाम से लोक विश्रुत है। यह गुंसाई जी तथा उनके वशधरों के आधिपत्य में है। इस वंश परम्परा के लोगों की संख्या 19 वीं सदी में लगभग 500 थी। श्रीकृष्ण को समर्पित यह मन्दिर हरिदासी संप्रदाय का मुख्यावास मात्र ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारत में यह एक मात्र मन्दिर है, जिस पर गोस्वामियों का एकाधिकार है। सत्तर हजार रुपयों की धनरशि से इनका पुनर्निर्माण निकट अतीत में ही हुआ। यह निधि दूर पास के यजमानों से तेरह वर्ष के अन्तराल में एकत्र की थी। सामान्य किन्तु अत्यन्त सारभूत स्वरूप के लाल पत्थर से निर्मित इस विशद वर्गाकार मन्दिर का प्रमुख केन्द्रीय द्वार संगमरमर से बना हुआ है, जो अत्यन्त प्रभावशाली है। यह भवन निर्माण शिल्प का एक प्रसन्न आदर्श प्रस्तुत करता है। यह सभ्य संसार के ऐसे कतिपय स्थानों में से एक है, जहाँ भारतीय शिल्प मृत अतीत की परिश्रम साध्य प्रति कृति मात्र न होकर एक जीवन्त कला है, जो निरन्तर स्वतः ही विकास की प्रक्रिया में प्रबर्द्धधमान है। गुसाइयों के वंशानुक्रमानुसार यह सम्पत्ति दो भागों में विभक्त हुई। उसका एक भाग स्वयं एक ब्रह्मचारी का था, किन्तु उसके भ्राता जगन्नाथ के मेघश्याम, मुरारीदास और गोपीनाथदास नामक तीन पुत्र थे, जिनमें से तीसरे निःसन्तान दिवंगत हो गये। शेष दोनों भाई वर्त्तमान वंश परम्परा के पूर्वज थे। जैसा कि ऐसे प्रकरणों में सामान्यतः होता है दोनों परिवार परस्पर संघर्षरत रहने लगे। एकाधिक बार शान्तिभंग होने की गम्भीर स्थिति के निवारणार्थ शासन को कानून की सहायता लेने को विवश होना पड़ा। अपने पूर्वज की महानता के परे कतिपय

गुंसाई ही सम्मान के अधिकारी होने का दावा कर सकते थे। या तो अपने वैदुष्य के कारण या अपनी नैतिकता की सटीकता के कारण, क्योंकि उनमें से बहुसंख्यक पढ़ लिख नहीं सकते थे। सामान्यत: उसके दो दावेदार थे। प्रत्येक 'बट' के लिये एक-एक। ये थे गुसाई जगदीश और किशोर चन्द्र। सम्प्रदाय के साहित्य की संकीर्ण सीमाओं में ये दोनों ही पक्ष अच्छे पढ़े-लिखे थे।

हरिदास के सन्दर्भ में नाभा जी के मूल भक्तमाल में निम्नोक्त छन्द है–

आशधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की।
जुगल नाम सौं नैम जपत नित कुंज बिहारी॥
अविंलोकित रहैं केलि सखी सुख को अधिकारी।
गान कला गंधर्व श्याम श्यामा को तोषें॥
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषें॥
नृपति द्वार ठाड़े रहें दरशन आशा जासकी।
आशधीर उद्योत कर रसिक छाप हरिदास की॥

इसके पश्चात् प्रियादास की टिप्पणि का या अनुपूरक इस प्रकार है–

टीका–

श्री स्वामी हरिदास रास राशि को बषांनि सकै
रसिकता की छाप कोई जाप मधि पाई है।
ल्यायौ कोऊ चोवा ताकौ अति मन भोवा वामै
डारयौ लै पुलनि यह खोवा हिय आइयै।
जानि के सुजान कही लै दिषावौ लाल प्यारे
नैसिकु उघारे पट सुगन्ध बुड़ाइयै।
पारस पषांन करि जल डरबाइ दियौ
कियौ तब शिष्य अंसैं नाना विधि गाइयै।

अन्य तथ्य

अकबर, तानसेन और हरिदास

कदाचित इसे सभी मानेगे कि इस विशिष्ट छन्द में शिष्य अपने गुरू से अधिक अस्पष्ट रहा है। भक्त सिंधु ने उक्त दोनों छन्दों का 211 पदों की कविता में विशदीकरण किया है तथा समस्त भ्रमों की कुंजी निम्नांकित विवरण में प्रदान की है-

कोल (अलीगढ़ का प्राचीन नाम) के समीपस्थ एक गाँव में, जो अब हरिदासपुर कहलाता है, एक सनाढ्य ब्राह्मण ब्रह्मधीर के जानधीर नामक एक सुपुत्र था। जिसके हृदय में गिरि धारण करने वाले श्रीकृष्ण के गिरधारी स्वरूप के प्रति विशेष समर्पण (भक्ति) भाव जाग्रत था और इस प्रकार उसने गोवर्धन के पावन पर्वत की अनेक तीर्थ यात्रायें की थीं। इसी प्रकार के एक अवसर पर उसने आशधीर रखा। अन्ततः आशधीर ने वृन्दावन के समीप स्थित एक छोटे से गाँव राजपुर के गंगाधर ब्राह्मण की आत्मजा से विवाह किया, जिसने संवत 1441 विक्रमी के भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को हरिदास को जन्म दिया। अपनी निपट शैशवावस्था से ही उसने अपनी भावी पवित्रता के संकेत दिये और अन्य बालकों के साथ खेलने के स्थान पर वह निरन्तर प्रार्थना और ध्यान में लगा रहता था। अपने माता पिता के अनुरोधों के परे उसने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया और 25 वर्ष की आयु में वृन्दावन के सामने यमुना के बायें किनारे स्थित एक प्राकृतिक झील मानसरोवर पर एक एकान्तिक कुटी में रहने लगा। हरिदास तदनन्तर वृन्दावनस्थ निधिवन में चले गये और यहाँ उन्होंने विट्ठलविपुल को औपचारिक रूप से अपना शिष्य बनाया, जो उनके स्वयं के मातुल थे। शीघ्रमेव हरिदास जी की ख्याति दूर दूर तक फैल गई और उनके अनेक दार्शनार्थियों में से दिल्ली से दयालदास नामक एक खत्री एक दिन आया, जिसे अनायास दार्शनिक का पत्थर प्राप्त हुआ, जो सम्पर्क में आई प्रत्येक वस्तु को सोने में रूपान्तरित कर देता था। उसने यह पत्थर एक महान् निधि के रूप में स्वामी जी को भेंट किया। स्वामी जी ने वह यमुना में फेंक दिया। दाता के प्रवोधन को देखकर स्वामी जी उसे यमुना किनारे ले गये और उसे मुट्ठी भर रेती जल में से निकालने का आदेश दिया। जब उसने वैसा ही किया तो प्रत्येक कण उसी तरह की प्रतिकृति प्रतीत हुई, जो फेंक दिया गया था और जब परीक्षण किया तो वह उन्हीं गुणों से सम्पन्न पाया गया। तब खत्री की समझ में आया कि सन्तों को भौतिक सम्पदा की कोई आवश्यकता नहीं है, लेकिन वे स्वयमेव परिपूर्ण होते हैं। तदनन्तर वह स्वामी हरिदास के शिष्यों में सम्मिलित हो गया।

यह सुनकर कि साधु को दार्शनिक का पत्थर भेंट किया गया है एक दिन जब स्वामी जी स्नान कर रहे थे, कुछ चोरों ने शालिग्राम को चुराने का अवसर पा लिया। उन्होंने सोचा कदाचित यही वह (पत्थर) हो। अपने उद्देश्य हेतु व्यर्थ जानकर उन्होंने (चोरों ने) उसे एक झाड़ी में फेंक दिया। जैसे ही सन्त उसकी खोज में उस स्थान से होकर निकले शालिग्राम की वाणी सुनाई दी कि मैं यहाँ

हूँ। उसी समय से प्रत्येक प्रात:काल किसी चामत्कारिक माध्यम से स्वामी जी को नित्य एक स्वर्ण-मुद्रा प्राप्त होने लगी जिससे वे मन्दिर का भोग लगाते और जो बचता था, उससे वे अन्न क्रय करते, जिसे वे यमुना में मछलियों को और तट पर मोर और वानरों को खिलाते थे।

एक दिन एक कायस्थ ने एक सहस्त्र रुपये मूल्य के 'अतर' की बोतल भेंट की और यह देखकर जड़ीभूत हो गया कि स्वामी जी ने उपेक्षा भाव से उसे भूमि पर पटक दिया, जिससे बोतल टूट गई और बहुमूल्य 'अतर' सब नष्ट हो गया। परन्तु जब उसे मन्दिर ले जाया गया तो उसने पाया कि भेंट भगवान द्वारा स्वीकृत हो गई है, क्योंकि पूरा मन्दिर भवन इत्र की सुगन्धि से महक रहा था।

दिल्ली के सम्राट् का एक बिगड़ा हुआ मूर्ख बेटा था, जो अपमानपूर्वक वहाँ से निकाल दिया गया था। अपनी घुमक्कड़ी में संयोगवश वह वृन्दावन आ निकला और वहाँ सड़क पर सो गया। उषाकाल में स्वामी जी जब निधिवन से स्नानार्थ जा रहे थे, तो उससे टकरा गये और उसकी महानी सुनकर उसका तानसेन नाम रख दिया और मात्र अपनी इच्छा शक्ति के प्रयोग से उसे एक अप्रतिम संगीतज्ञ के रूप में परिवर्तित कर दिया। उसके दिल्ली लौटने पर सम्राट् उसकी विचक्षणता पर आश्चर्य विजडित रह गया और उसने वृन्दावन यात्रा की तथा उस गुरु के दर्शन करने की ठान ली, जिससे उसने शिक्षा ग्रहण की थीं तदनुसार, जब वह आगरा आया, तो वह मथुरा चला गया तथा भतरौंद तक आधे मार्ग घोड़े पर और वहाँ से पैदल निधिवन तक गया। सन्त ने अपने पुराने शिष्य का गरिमापूर्वक स्वागत किया और उसके शाही सी को देखा भी नहीं, यद्यपि वह जानते थे कि वह कौन है। अन्तत: जब सम्राट् ने निरन्तर कुछ करने योग्य सेवा की अभ्यर्थना की तो उसे वह समीपस्थ बिहारी घाट ले गये, जो वर्त्तमान में ऐसा लग रहा था जैसे कि प्रत्येक सीढ़ी बहुमूल्य स्वर्ण जड़ित पत्थर की हो और एक सीढ़ी में कुछ कमी दिखाते हुए सम्राट् से कहा कि उसके स्थान पर दूसरी रखवा दें। यह कार्य महान् सम्राट् की भी शक्ति से परे था। सम्राट् ने पवित्र वानरों और मयूरों के पोषणार्थ छोटा सा अनुदान देकर तुष्टि पाई और वह प्रभूत सदुपदेश प्राप्त करके अपने मार्ग चला गया।

स्वामी हरिदास के जीवन में अन्य किसी घटना का उल्लेख अभिलिखित नहीं मिलता। उनके अनन्तर उनके उत्तराधिकारी उनके मातुल विट्ठल विपुल और उनके पश्चात् बिहारीदास हुए। बिहारीदास प्रेम उन्माद में इतने निमग्न हो गये कि मन्दिर के प्रशासनार्थ जगन्नाथ नामक एक पंजाबी सारस्वत ब्राह्मण बुलाया

गया। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके अनेक उत्तराधिकारी आते गये, जिसे लिखना अनावश्यक प्रतीत होता है।

यही भक्तसिन्धु का विवरण है, जो भक्तमाल के दोनों अस्पष्ट संकेतों–अतर और दार्शनिक पत्थर, वानरों और मोरों के नित्य खिलाने और सम्राट् की वृन्दावन यात्रा–का स्पष्टीकरण प्रदान करता है। अन्य विषयों में स्वामी जी के उत्तराधिकारियों द्वारा स्वीकृत परम्पराओं से यह मेल नहीं खाता। क्योंकि उनका कथन है कि वह सनाढ्य नहीं प्रत्युत सारस्वत थे, यह कि उनका परिवार कोल या जलेसर से नहीं, प्रत्युत मुलतान के पास ऊछ से आया था और यह कि वह चार शताब्दी पूर्व नहीं, प्रत्युत अधिक से अध्रिय का जन्म सन् 1485 ई. और शरीरान्त सन् 1527 ई. में हुआ। लेकिन, यद्यपि हरिदास ने चैतन्य के उपदेशों की भावना का समाहार किया था, फिर भी इस धारणा का कोई कारण नहीं कि उन दोनों के मध्य कोई वार्त्तालाप हुआ होगा। यदि ऐसा होता तो यह तथ्य भक्तमाल या उसके आधुनिक व्याख्याकारों से शायद ही छूट पाता।

ग्राउस के विचार

स्वामी हरिदास जी की समाधि, निधिवन, वृन्दावन

मेरे (ग्राउस) पास 680 पृष्ठों की एक छोटी पोथी है, जिसमें संस्थापक से लेकर इस हस्तलेख की तिथि संवत 1825 तक के समस्त महन्तों की तथा उनके लेखों की तालिका है। सूची यह है–

स्वामी हरिदास
विट्ठल विपुल
बिहारिनदास
नागरीदास
सरसदास
नवलदास
नरहरदास
रसिकदास तथा
ललितकिशोर (ललितमोहनीदास)

प्रत्येक महन्ती के लिये बीस वर्ष रखे जायें, जो एक ऊँचा औसत है, क्योंकि इस पद पर एक वयस्क व्यक्ति का चयन होता है, स्वामी हरिदास के

शरीरान्त की तिथि मात्र संवत 1665 विक्रमी ठहरती है। उनकी रचना शैली में तुलसीदास की कविता से अधिक पूर्ववर्ती नहीं हैं, जिनका देहावसान संवत 1680 में हुआ था। अत: प्रत्येक दशा में निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे अकबर और जहाँगीर के शासनकाल में ईसवी की सोलहवीं शती के अन्त और सत्रहवीं शती के आरम्भ में विद्यमान रहे। उपरिलिखित सूची में प्रत्येक महन्त अपने पूर्ववर्ती महन्त का शिष्य उल्लिखित है और प्रत्येक ने कुछ भक्ति कविताएँ लिखीं, जिन्हें साखी, चौबोला या पद कहा जाता है। सर्वाधिक मात्रा में लिखने वाले लेखक बहारिनदास हैं, जिनके पद 684 पृष्ठों का कलेवर भरते हैं। उनमें से अनेक पदों में अतिशयातिरेक में वे रहस्यात्मक भक्ति को अभिव्यक्त करते हैं, जो दिव्यभाव की अपेक्षा भौतिकता की द्योतक हैं। किन्तु निम्नोक्त उद्धरण सर्वथा पृथक् प्रकृति का है। यह स्वामी हरिदास के देहावसान की तिथि का अनुमोदन करने की दिशा में अधिक सहायक है, जो ऊपर निष्कर्षित है। क्योंकि इसमें सम्राट् अकबर और उसके प्रसिद्ध मित्र बीरबल की मृत्यु का नाम से उल्लेख है, जो सन् 1590 ई. में हुई थी।

राग गोरी

कहा गर्वे रे मृतक नर ।
स्वान स्यार की खघन पांन तन अंठि चलत रे निलज निडर ।
यहै अवधि जग विदित जग बांभन बड़े भये बीरबर ।
मरत दूष्यौं हियौ न जियौ किसी न सहाइ अकबर ।
स्वासन निकसत सुर असुर रषि गेंथि काल करतर
इतहि न उतहि बीच ही भूल्यों है फिरत कौंन कौ थर ।
सुखद सरन हरिचरन कमल भजि बादि फिरत भटकत घर धर ।
श्री बिहारीदास हरिदास विपुलबल लटकि लग्यौ संग सर्वोपर ।

संप्रदाय के संस्थापक की 'साधारण सिद्धान्त' और 'रास के पद' शीर्षक 41 पृष्ठों की केवल दो छोटी रचनाएँ हैं। पहली अपने मूल पाठ में नीचे उद्धृत की जाती है। मन्दिर के सभी भक्तों को इसका बहुलांश कंठस्थ है, यद्यपि निश्चयपूर्वक जान लिया गया कि उनमें से विरले ही इसके सामान्य अर्थ से आगे अधिक जानते हैं। किशोरचन्द्र जैसे बहुज्ञ पुजारी ने इसका अवलोकन किया और उसके कुछ अंशों के अर्थ किये। अन्य पंडितों का अभिमत लेने पर वे अर्थ अपर्याप्त पाये गये और विवशत: छोड़ने पड़े।

राग विभास

ज्यौंही ज्यौंही तुम राषत हौ त्यौंही त्यौंही रहियत है हों हरि।
और तौ अचरचे पाय धरौं सु तौ कहौं कौन के पेंड भरि ।
जद्यपि हौं अपनौ भायौ कियौ चाहौं कैसे करि सकौं जो तु राखौ पकरि ।
हरिदास के स्वामी श्याम कुंज बिहारी
पिजरा के जनावर लौं तरफराय रहौ उड़िवे कौ कितौक करि ।1।
काहूकौ बस नांहि तुम्हारी कृपा ते सब होय श्री बिहारी बिहारिन ।
और मिथ्या प्रपंच काहे कौं भाषिये सो तौ है हारिनि ।
जाहि तुम सौं हित तासौं तुम हित करौ सब सुख कारनि ।
हरिदास के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी प्राँननि के आधारनि ।2।
कबहूँ कबहूँ मन इत उत जातैं यातें अब कौन है अधिक सुष।
बहुत भाँति नयत आंनि राष्यौ नाहितौ पावतौ दुष ।
कोटि कमलावन्य बिहारी तातै मुहा चुहीं सब सुष लियें रहत रुष।
हरिदास के स्वामी श्यामा कुंज बिहारी दिन देषत रहौ विचित्र मुष ।3।
हरि भजि हरि भजि छांड़िन मान नर तन कौ।
जिन बंछैरे जिन बंछैरे तिल तिल धनकौं ।
अनमागैं आगैं आवैगौ ज्यौं पल लागैं पलकौं ।
कहि हरिदास मीच ज्यौं आवै त्यौं धन आपुन कौ ।4।

राग बिलावल

हे हरि मोसौं न बिगारन कौं तोसौं न संम्हारन कौं मोहि तांहि परी होड़।
कौंन धौं जी तै कौंन धौं हारै परि बादी न छोड़ ।
तुम्हारी मायाबाजी पसारी विचित्र मोहे मुनि काके भूले कोउ।
कहि हरिदास हम जीते हारे तुम तहु न तोड़ ।5।
वंदे अषत्यार भला ।
चित न डुलाव आव समाधि भीतर न होहु अगला ।
न फिर दर दर पदर पद न होहु अधला।
कहि हरिदास करता किया सो हुवा सुमेर अचल चला ।6।
हित तौ कीजै कमल नैन सों जा हित के आगैं और हित के लागै फीकौ।
कै हित कीजैं साधु संगत सौं ज्यौं कलमषि जाय जीकौ।
हरि कौ हित ऐसौ जैसौ रंग मजीठ।

संसार हिंत असौ जैसौ रंग कसूम दिन दुती कौ।
कहि हरिदास हित कीजै बिहारी सौं और निवाहू जी कौ ।7।
तिनका बयार बस
ज्यौं भावै त्यौं उड़ाय ले जाय आपने रस ।
ब्रह्म लोक शिवलोक और लोक अस।
कहे हरिदास विचार देषौ विना बिहारी नाहिं जस ।8।
संसार समुद्र मनुष्य मीन नक्र मगर और जीब बहु बंदसि ।
मन बयार प्रेरे स्नेह फंद फदसि ।
लोभ पिंजरा लोभी मरजिया पदारथ चारि षंदषंदसि।
कहि हरिदास तेई जीव पराभये जे गहि रहे चरन आनन्द नन्दसि ।9।
हरि के नाम कौ आलस कित करत है रे काल फिरत सर सांधे ।
बेर कुबेर कछू नहि जानत कद्यौ फिरत है कांधे।
हीरा बहुत जवाहिर सच्चे राँचे कहा भयौ हस्ती दर बाँधे ।
कहि हरिदास महल में बनिता बनठाढ़ी भईघ
तव कछु न चलत जब आवत अन्त की आँधे ।10।
देषौ इनि लोगन की लावनि ।
बूझत नाँहिं हरिचरनकमल कौं मिथ्या जन्म गवावनि।
जब जमदूत आय घेरत हैं करत आप मनभावनि ।
कहै हरिदास तबहीं चिरजीवै कुंजबिहारी चितवनि ।11।
मन लगाय प्रीति कीजै करवासों ब्रज बीचिन न दीजे सोहनी।
वृन्दावन सो बन उपबन सौं गुंजमाल हाथ पोहनी ।
गो गोसुतन सों मृगी मृगसुतन सौं और तन नेंक न जोहनी ।
हरिदास के स्वामी श्यामां कुंज बिहारी सोचित ज्यों सिर पर दोहनी ।12।

राग कल्यान

हरि कौ असोई सब खेल ।
मृग तृष्णा जग ब्यापि रह्यों है कहूँ बिजौरै न बेलि।
धन मद जोवन मद राज मद ज्यौं पंछिन में डेल ।
कहै हरिदास यहै जिय जानौ तीरथ को सौ मेल ।13।
माई धनि वे मृगी जे कमल नैन कों पूजित अपनें अपनैं भरतारन सहित।
धनिवे गाइ वछ वेई जे वशरस पीवत श्रवन दोना ज्यौं जाई न बहत ।

पंछी न होंहिं मुनि जन जेते केते सेवहि दिन काम क्रोध लोभ रहित।
सुनि हरिदास हमारे पति ते कठिन जान दे हये राखत गहत ।।14।

राग बरारी

लाल मेरे दूध की दोहनी।
मारग जात माहि रह्यौ री अंचरा मेरौ जाहिन दंत हो बिना बोहना।
नागरि गूजरि ठगि लीनों मेरौं लाल गोरोचन कौ तिलक भावै मोहना।
हरिदास के स्वामी इहां असोई न्याव है या नगरी जिन बसोरी सोहनी।।15।

राग कान्हरो

झूठी बात सांची करि दिषावत हौ हरि नागर।
निसि दिन बुनत उधेरत हौ जाय प्रपंच कौ सागर।
ठाठ बनाय धरयौ मिहरी कौ है पुरुषतें आगर।
सुनि हरिदास यहै जिय जानों सुपनें कौ सौ जागर।।16।
जगत प्रीति करि देवी नाहि नेंग टीकौ कोऊ।
छत्रपति रंक लौ देषै प्रकृति विरोध न बन्यौ कोऊ।
दिन जु गये बहुत जन्मन के ऐसौ जावौं जिन कोऊ।
सुनि हरिदास मीत भलौ पायौ विहारी ऐसौ पावौ सब कोऊ।।17।
लोग तौ भूल्यौ भलै भूल्यों तुम मति भूलौ मालाधारी।
आपनौ पति छाँड़ि आरनि सौं राति ज्यौं दारिन में दारी।
स्याम कहत जे जीव मोते विमुख जोको जिन दूसरी कर डारी।
कहि हरिदास जज्ञ देवता पितरन कौ शरधा भारी ।।18।
जौलौ जीवै तौलौ हरि मज रे मन और बात सब बादि ।
द्यौस चार के हलभला में तू कहा लेगौ लादि।
धनमद जोवनमद राजमद भूल्यौ नगर विवादि।
कहि हरिदास लोभ चरपट भयौ काहेकी लगै फिरादि।।19।
प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे कैसे लागै घाट।
बेकार्यौं दै जानि कहावत जानि पन्यौ को कहा परी वाट।
काहू कौ सर सूधौ न परै मारत गाल गली गली हाट।
कहि हरिदास जानि ठाकुर बिहारी तकत न ओट पाट।।20।

सम्बंधित प्रसंग

एक बार हरिदास भगवती यमुना की रेती में बैठे हुए थे। वसन्त-ऋतु का यौवन अपनी पराकाष्ठा पर था। चारों ओर कोयल की सुरीली और मीठी कण्ठाध्वनि कुंज-कुंज में अनुपम उद्दीपन का संचार कर रही थी। लताएं कुसुमित होकर पादपों के गाढ़ालिंगन में शयन कर रही थीं। वृन्दावन के मन्दिरों में धमार की धूम थी। रसिक हरिदास का मन डोल उठा। उनके प्राणप्रिय रास-बिहारी की मनोरम दिव्यता उनके नयनों में समा गयी। वृन्दावन की चिन्मयता की आरसी में अपने उपास्य की झांकी करके वे ध्यानस्थ हो गये। उन्हें तनिक भी बाह्य ज्ञान नहीं था। वे मानस-जगत की सीमा में भगवदीय कान्ति का दर्शन करने लगे। भगवान राधारमण रंगोत्सव में प्रमत्त होकर राधारानी के अंग-अंग को कर में कनक पिचकारी लेकर सराबोर कर रहे थे। ललिता, विशाखा आदि रासेश्वरी की ओर से नन्दनन्दन पर गुलाल और अबीर फेंक रही थीं। यमुना-जल रंग से लाल हो चला था। बालुका में गुलाल और बुक्के के कण चमक रहे थे। भगवान होली खेल रहे थे। हरिदास के प्राणों में रंगीन चेतनाएं लहराने लगीं। नन्दनन्दन के हाथ की पिचकारी छूट ही तो गयी। हरिदास के तन-मन भगवान के रंग में शीतल हो गये। उनका अन्तर्देश गहगहे रंग में सराबोर था। भगवान ने भक्त को ललकारा। हरिदास ने भगवान के पीताम्बर पर इत्र की शीशी उड़ेल दी। इत्र की शीशी जिसने भेंट की थी, वह तो उनके इस चरित्र से आश्चर्यचकित हो गया। जिस वस्तु को उसने इतने प्रेम से प्रदान किया था, उसे उन्होंने रेती में छिड़ककर अपार आनन्द का अनुभव किया। रसिक हरिदास की आंखें खुलीं। उन्होंने उस व्यक्ति की मानसिक वेदना की बात जान ली और शिष्यों के साथ श्रीबिहारी जी के दर्शन के लिये भेजा। उस व्यक्ति ने बिहारी जी का वस्त्र इत्र से सराबोर देखा, और देखा कि पूरा मन्दिर विलक्षण सुगन्ध से परिपूर्ण था। वह बहुत लज्जित हुआ, पर भगवान ने उसकी परम प्यारी भेंट स्वीकार कर ली, यह सोचकर उसने अपने सौभाग्य की सराहना की।

एक बार एक धनी तथा कुलीन व्यक्ति ने हरिदास से दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की और उन्हें पारस भेंट स्वरूप दिया। हरिदास ने पारस को पत्थर कहकर यमुना में फेंक दिया और उसे शिष्य बना लिया।

अपने दरबारी गायक भक्तवर तानसेन से एक बार अकबर ने पूछा- 'क्या तुमसे बढ़कर भी कोई गाने वाले व्यक्ति हैं।' तानसेन ने विनम्रतापूर्वक स्वामी हरिदास जी का नाम लिया। अकबर ने उन्हें राजसभा में आमन्त्रित करना चाहा,

पर तानसेन ने निवेदन किया कि वे कहीं आते-जाते नहीं। निधिवन जाने का निश्चय हुआ। हरिदास जी तानसेन के संगीत-गुरु थे। उनके सामने जाने में तानसेन के लिये कुछ भी अड़चन नहीं थी। रही अकबर की बात, सो उन्होंने वेष बदलकर एक साधारण नागरिक के रूप में उनका दर्शन किया। तानसेन ने जान-बूझकर एक गीत गलत राग में गाया। स्वामी हरिदास ने उसे परिमार्जित और शुद्ध करके कोकिल कण्ठ से जब अलाप भरना आरम्भ किया, तब अकबर ने संगीत की दिव्यता का अनुभव किया। तानसेन ने कहा- 'स्वामी जी सम्राटों के सम्राट भगवान श्रीकृष्ण के गायक हैं।'

एक बार श्रीकृष्ण चैतन्य गौरांग महाप्रभु से वे बात कर रहे थे। ठीक उसी समय राधाकुण्ड निवासी रघुनाथदास मानसिक शृंगार में खोयी हुई प्रियाजी की पुष्प-वेणी खोजते उनके निकट आ पहुंचे। स्वामी जी ने अश्वत्थ वृक्ष के नीचे पता लगाकर उनकी मानसिक सेवा की, समस्त व्यवस्था का निरूपण कर दिया। स्वामी हरिदास ने रस की प्रीति-रीति चलायी, जिस पथ पर यती, योगी, तपी और संन्यासी ध्यान लगाकर भगवान के दर्शन से अपनी साधना सफल करते हैं और फिर भी उनके रूप-रस की कल्पना नहीं कर पाते, उसी को स्वामी हरिदास ने अपनाकर भगवान 'रसो वै सरू' को मूर्तिमान पा लिया। स्वामी हरिदास जी 'निम्बार्क सम्प्रदाय' के अन्तर्गत 'टट्टी सम्प्रदाय' के संस्थापक थे। संवत 1630 विक्रमी तक वे निधिवन में विद्यमान थे। वृन्दावन की नित्य नवीन भगवल्लीलामीय चिन्मयता के सौन्दर्य में उनकी रसोपासना ने विशेष अभिवृद्धि की।

8

कालिदास

कालिदास (अंग्रेजी) संस्कृत भाषा के सबसे महान् कवि और नाटककार थे। कालिदास ने भारत की पौराणिक कथाओं और दर्शन को आधार बनाकर रचनाएं कीं। कलिदास अपनी अलंकार युक्त सुंदर सरल और मधुर भाषा के लिये विशेष रूप से जाने जाते हैं। उनके ऋतु वर्णन अद्वितीय हैं और उनकी उपमाएं बेमिसाल। संगीत उनके साहित्य का प्रमुख अंग है और रस का सृजन करने में उनकी कोई उपमा नहीं। उन्होंने अपने श्रृंगार रस प्रधान साहित्य में भी साहित्यिक सौन्दर्य के साथ-साथ आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का समुचित ध्यान रखा है। उनका नाम अमर है और उनका स्थान वाल्मीकि और व्यास की परम्परा में है। कालिदास शिव के भक्त थे। कालिदास नाम का शाब्दिक अर्थ है, 'काली का सेवक'। कालिदास दिखने में बहुत सुंदर थे और विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में एक थे। लेकिन कहा जाता है कि प्रारंभिक जीवन में कालिदास अनपढ़ और मूर्ख थे। कालिदास की शादी विद्योत्तमा नाम की राजकुमारी से हुई।

जीवन परिचय

महाकवि कालिदास कब हुए और कितने हुए इस पर विवाद होता रहा है। विद्वानों के अनेक मत हैं। 150 वर्ष ईसा पूर्व से 450 ईस्वी तक कालिदास हुए होंगे ऐसा माना जाता है। नये अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि इनका काल गुप्त काल रहा होगा। रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों की रचना के पश्चात्

संस्कृत साहित्य के आकाश में अनेक कवि-नक्षत्रों ने अपनी प्रभा प्रकट की, पर नक्षत्र - तारा - ग्रहसंकुला होते हुए भी कालिदास - चन्द्र के द्वारा ही भारतीय साहित्य की परम्परा सचमुच ज्योतिष्मयी कही जा सकती है। माधुर्य और प्रसाद का परम परिपाक, भाव की गम्भीरता तथा रसनिर्झरिणी का अमन्द प्रवाह, पदों की स्निग्धता और वैदिक काव्य परम्परा की महनीयता के साथ-साथ आर्ष काव्य की जीवनदृष्टि और गौरव-इन सबका ललित सन्निवेश कालिदास की कविता में हुआ है।

सार्वभौमिक कवि

कालिदास विश्ववन्द्य कवि हैं। उनकी कविता के स्वर देशकाल की परिधि को लाँघ कर सार्वभौम बन कर गूंजते रहे हैं। इसके साथ ही वे इस देश की धरती से गहरे अनुराग को पूरी संवेदना के साथ व्यक्त करने वाले कवियों में भी अनन्य हैं। कालिदास के समय तक भारतीय चिन्तन परिपक्व और विकसित हो चुका था, षड्दर्शन तथा अवैदिक दर्शनों के मत-मतान्तर और सिद्धान्त परिणत रूप में सामने आ चुके थे। दूसरी ओर आख्यान-उपाख्यान और पौराणिक वाङमय का जन-जन में प्रचार था। वैदिक धर्म और दर्शन की पुनः स्थापना का भी अभूतपूर्व समुद्यम उनके समय में या उसके कुछ पहले हो चुका था। ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद आदि विभिन्न विद्याओं का भी अच्छा विकास कालिदास के काल तक हो चुका था। कालिदास की कवि चेतना ने चिन्तन तथा ज्ञान-विज्ञान की इस सारी परम्परा, विकास को आत्मसात किया, अपने समकालीन समाज और जीवन को भी देखा-परखा और इन सबको उन्होंने अपनी कालजयी प्रतिभा के द्वारा ऐसे रूप में अभिव्यक्त किया, जो अपने अद्वितीय सौन्दर्य और हृदयावर्जकता के कारण युग-युग तक आकर्षक ही नहीं बना रहा, उसमें अर्थों और व्याख्याओं की भी सम्भावनाएं कभी चुकने को नहीं आतीं।

संसार के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार

कविकुल गुरु महाकवि कालिदास की गणना भारत के ही नहीं वरन् संसार के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों में की जाती है। उन्होंने नाट्य, महाकाव्य तथा गीतिकाव्य के क्षेत्र में अपनी अदभुत रचनाशक्ति का प्रदर्शन कर अपनी एक अलग ही पहचान बनाई। जिस कृति के कारण कालिदास को सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली, वह है उनका नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' जिसका विश्व की अनेक

भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उनके दूसरे नाटक 'विक्रमोर्वशीय' तथा 'मालविकाग्निमित्र' भी उत्कृष्ट नाट्य साहित्य के उदाहरण हैं। उनके केवल दो महाकाव्य उपलब्ध हैं - 'रघुवंश' और 'कुमारसंभव' पर वे ही उनकी कीर्ति पताका फहराने के लिए पर्याप्त हैं।

कालिदास द्वारा शूरसेन जनपद का वर्णन

महाकवि कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समकालीन माने जाते हैं। रघुवंश में कालिदास ने शूरसेन जनपद, मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन तथा यमुना का उल्लेख किया है। इंदुमती के स्वयंवर में विभिन्न प्रदेशों से आये हुए राजाओं के साथ उन्होंने शूरसेन राज्य के अधिपति सुषेण का भी वर्णन किया है । मगध, अंसु, अवंती, अनूप, कलिंग और अयोध्या के बड़े राजाओं के बीच शूरसेन - नरेश की गणना की गई है। कालिदास ने जिन विशेषणों का प्रयोग सुषेण के लिए किया है उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि वह एक प्रतापी शासक था, जिसकी कीर्ति स्वर्ग के देवता भी गाते थे और जिसने अपने शुद्ध आचरण से माता-पिता दोनों के वंशों को प्रकाशित कर दिया था। इसके आगे सुषेण को विधिवत यज्ञ करने वाला, शांत प्रकृति का शासक बताया गया है, जिसके तेज से शत्रु लोग घबराते थे। यहाँ मथुरा और यमुना की चर्चा करते हुए कालिदास ने लिखा है कि जब राजा सुषेण अपनी प्रेयसियों के साथ मथुरा में यमुना-विहार करते थे तब यमुना-जल का कृष्णवर्ण गंगा की उज्ज्वल लहरों-सा प्रतीत होता था । यहाँ मथुरा का उल्लेख करते समय संभवत: कालिदास को समय का ध्यान नहीं रहा। इंदुमती (जिसका विवाह अयोध्या-नरेश अज के साथ हुआ) के समय में मथुरा नगरी नहीं थी। वह तो अज की कई पीढ़ी बाद शत्रुन के द्वारा बसाई गई। टीकाकार मल्लिनाथ के उक्त श्लोक की टीका करते समय ठीक ही इस संबंध में आपत्ति की है । कालिदास ने अन्यत्र शत्रुन के द्वारा यमुना-तट पर भव्य मथुरा नगरी के निर्माण का कथन किया है। शत्रुन के पुत्रों शूरसेन और सुबाहु का क्रमश: मथुरा तथा विदिशा के अधिकारी होने का भी वर्णन रघुवंश में मिलता है।

वृन्दावन और गोवर्धन का वर्णन

कालिदास द्वारा उल्लिखित शूरसेन के अधिपति सुषेण का नाम काल्पनिक प्रतीत होता है। पौराणिक सूचियों या शिलालेखों आदि में मथुरा के किसी सुषेण

राजा का नाम नहीं मिलता। कालिदास ने उन्हें 'नीप-वंश' का कहा है । परंतु यह बात ठीक नहीं जँचती। नीप दक्षिण पंचाल के एक राजा का नाम था, जो मथुरा के यादव-राजा भीम सात्वत के समकालीन थे। उनके वंशज नीपवंशी कहलाये। कालिदास ने वृन्दावन और गोवर्धन का भी वर्णन किया है। वृन्दावन के वर्णन से ज्ञात होता है कि कालिदास के समय में इस वन का सौंदर्य बहुत प्रसिद्ध था और यहाँ अनेक प्रकार के फूल वाले लता-वृक्ष विद्यमान थे।

कालिदास ने वृन्दावन की उपमा कुबेर के चौत्ररथ नाम उद्यान से दी है।

गोवर्धन की शोभा का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं-'हे इंदुमति, तुम गोवर्धन पर्वत के उन शिलातलों पर बैठा करना जो वर्षा के जल से धोये जाते हैं तथा जिनसे शिलाजीत जैसी सुगंधि निकलती रहती है। वहाँ तुम गोवर्धन की रमणीक कन्दराओं में, वर्षा ऋतु में मयूरों का नृत्य देखा करना। कालिदास के उपर्युक्त वर्णनों से तत्कालीन शूरसेन जनपद की महत्त्वपूर्ण स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। आर्यावर्त के प्रसिद्ध राजवंशों के साथ उन्होंने शूरसेन के अधिपति का उल्लेख किया है। 'सुषेण' नाम काल्पनिक होते हुए भी कहा जा सकता है कि शूरसेन-वंश की गौरवपूर्ण परंपरा ई. पाँचवी शती तक अक्षुण्ण थी। वृन्दावन, गोवर्धन तथा यमुना संबंधी वर्णनों से ब्रज की तत्कालीन सुषमा का भी अनुमान लगाया जा सकता है। कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र' से ज्ञात होता है कि सिंधु नदी के तट पर अग्निमित्र के लड़के वसुमित्र की मुठभेड़ यवनों से हुई और भीषण संग्राम के बाद यवनों की पराजय हुई। यवनों के इस आक्रमण का नेता सम्भवत: मिनेंडर था। इस राजा का नाम प्राचीन बौद्ध साहित्य में 'मिलिंद' मिलता है।

कालिदास का साहित्य

कालिदास संस्कृत साहित्य और भारतीय प्रतिभा के उज्ज्वल नक्षत्र हैं। कालिदास के जीवनवृत्त के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। कुछ लोग उन्हें बंगाली मानते हैं। कुछ का कहना है, वे कश्मीरी थे। कुछ उन्हें उत्तर प्रदेश का भी बताते हैं। परंतु बहुसंख्यक विद्वानों की धारणा है कि वे मालवा के निवासी और उज्जयिनी के सम्राट विक्रमादित्य के नव-रत्नों में से एक थे। विक्रमादित्य का समय ईसा से 57 वर्ष पहले माना जाता है। जो विक्रमी संवत का आरंभ भी है। इस वर्ष विक्रमादित्य ने भारत पर आक्रमण करने वाले शकों को पराजित किया था। कालिदास के संबंध में यह किंवदंती भी प्रचलित है कि वे पहले

निपट मूर्ख थे। कुछ धूर्त पंडितों ने षड्यंत्र करके उनका विवाह विद्योत्तमा नाम की परम विदुषी से करा दिया। पता लगने पर विद्योत्तमा ने कालिदास को घर से निकाल दिया। इस पर दुखी कालिदास ने भगवती की आराधना की और समस्त विद्याओं का ज्ञान अर्जित कर लिया। इन्हें भी देखें– कालिदास के काव्य में प्रकृति चित्रण, कालिदास के चरित्र-चित्रण, कालिदास की अलंकार-योजना, कालिदास का छन्द विधान, कालिदास की रस संयोजना, कालिदास का सौन्दर्य और प्रेम एवं कालिदास लोकाचार और लोकतत्त्व

रचनाएँ

कालिदास रचित ग्रंथों की तालिका बहुत लंबी है। पर विद्वानों का मत है कि इस नाम के और भी कवि हुए हैं जिनकी ये रचनाएं हो सकती हैं। विक्रमादित्य के नवरत्न कालिदास की सात रचनाएं प्रसिद्ध है।

इनमें से चार काव्य-ग्रंथ हैं-

रघुवंश

कुमारसंभव

मेघदूत

ऋतुसंहार।

तीन नाटक हैं-

अभिज्ञान शाकुंतलम्

मालविकाग्निमित्र

विक्रमोर्वशीय।

इन रचनाओं के कारण कालिदास की गणना विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों और नाटककारों में होती है। उनकी रचनाओं का साहित्य के साथ-साथ ऐतिहासिक महत्त्व भी है। संस्कृत साहित्य के 6 काव्य ग्रंथों की गणना सर्वोपरि की जाती है। इनमें अकेले कालिदास के तीन ग्रंथ - रघुवंश, कुमारसंभव और मेघदूत हैं। ये 'लघुत्रयी' के नाम से भी जाने जाते हैं। शेष तीन में भारवि कृत किरातर्जुनीय, माघ कृत शिशुपाल वध और श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरित की रचनाएं आती हैं। इसके अतिरिक्त अनेक अन्य काव्यों के साथ भी कालिदास का नाम जोड़ा जाता रहा है- जैसे श्रृङ्गारतिलक, श्यामलादण्डक आदि। ये काव्य या तो कालिदास नामधारी परवर्ती कवियों ने लिखे अथवा परवर्ती कवियों ने अपना काव्य प्रसिद्ध कराने की इच्छा से उसके साथ कालिदास का नाम जोड़ दिया।

पार्वती का सौंदर्य वर्णन

अपने कुमारसम्भव महाकाव्य में पार्वती के रूप का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने लिखा है कि संसार में जितने भी सुन्दर उपमान हो सकते हैं उनका समुच्चय इकट्ठा करके, फिर उसे यथास्थान संयोजित करके विधाता ने बड़े जतन से उस पार्वती को गढ़ा था, क्योंकि वे सृष्टि का सारा सौन्दर्य एक स्थान पर देखना चाहते थे। वास्तव में पार्वती के सम्बन्ध में कवि की यह उक्ति स्वयं उसकी अपनी कविता पर भी उतनी ही खरी उतरती है। 'एकस्थसौन्दर्यदि–क्षा' उसकी कविता का मूल प्रेरक सूत्र है, जो सिसृक्षा को स्फूर्त करता है। इस सिसृक्षा के द्वारा कवि ने अपनी अद्वैत चैतन्य रूप प्रतिमा को विभिन्न रमणीय मूर्तियों में बाँट दिया है। जगत् की सृष्टि के सम्बन्ध में इस सिसृक्षा को अन्तर्निहित मूल तत्त्व बताकर महाकवि ने अपनी काव्यसृष्टि की भी सांकेतिक व्याख्या की है।

प्रसिद्ध रचनाएं

कालिदास को सर्वाधिक प्रसिद्धि नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' से मिली है जिसका विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उनके दूसरे नाटक 'विक्रमोर्वशीय' तथा 'मालविकाग्निमित्र' भी उत्कृष्ट नाट्य साहित्य के उदाहरण हैं। उनके केवल दो महाकाव्य उपलब्ध हैं – 'रघुवंश' और 'कुमारसंभव' पर वे ही उनकी कीर्ति पताका फहराने के लिए पर्याप्त हैं। काव्यकला की दृष्टि से कालिदास का 'मेघदूत' अतुलनीय है। इसकी सुन्दर सरस भाषा प्रेम और विरह की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति से पाठक मुग्ध और भावभिवोर हो उठते हैं। 'मेघदूत' का भी विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उनका 'ऋतु संहार' प्रत्येक ऋतु के प्रकृति चित्रण के लिए ही लिखा गया है। कालिदास के काल के विषय में काफी मतभेद हैं। पर अब विद्वानों की सहमति से उनका काल प्रथम शताब्दी ई. पू. माना जाता है। इस मान्यता का आधार यह है कि उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के शासन काल में कालिदास का रचनाकाल सम्बद्ध है।

रघुवंश महाकाव्य

कालिदास की कृतियों के क्रम में 'रघुवंश महाकाव्य' का 'तीसरा स्थान' है। प्रथम दो कृतियां हैं– 'कुमारसंभव' और 'मेघदूत'। 'रघुवंश' कालिदास रचित

महाकाव्य है। इसमें 'उन्नीस सर्ग' हैं, जिनमें रघुकुल के इतिहास का वर्णन किया गया है। महाराज रघु के प्रताप से उनके कुल का नाम 'रघुकुल' पड़ा। रघुकुल में ही राम का जन्म हुआ था। रघुवंश के अनुसार दिलीप रघुकुल के प्रथम राजा थे, जिनके पुत्र रघु द्वितीय थे। उन्नीस सर्गों में कालिदास ने राजा दिलीप, उनके पुत्र रघु, रघु के पुत्र अज, अज के पुत्र दशरथ, दशरथ के पुत्र राम तथा राम के पुत्र लव और कुश के चरित्रों का वर्णन किया है।

रघुवंश

'रघुवंश' कालिदास की सर्वाधिक प्रौढ़ काव्यकृति है। 'कुमारसम्भव' की तुलना में इसका फलक विस्तीर्णतर है। अनेक चरित्रों और नाना घटना प्रसंगों की वज्रसमुत्कीर्ण मणियों को कवि ने इसमें एक सूत्र में पिरो दिया है और उनके माध्यम से राष्ट्र की गौरवशाली परम्पराओं, आस्थाओं और संस्कृति की महतनीय उपलब्धियों की तथा समसामयिक सामंतीय समाज के अध:पतन की महागाथा उज्ज्वल पदावली में प्रस्तुत कर दी है। दिलीप और रघु जैसे उदात्त चरित्रों के आख्यान से आरम्भ कर राम के चरित्र को भी रघुवंश प्रस्तुत करता है और 'अग्निवर्ण' जैसे विलासी राजा को भी।

कथावस्तु

प्रथम सर्ग

प्रथम सर्ग राजा दिलीप के चरित्र-वर्णन से प्रारम्भ होता है। पुत्रविहीन राजा दिलीप अपनी पत्नी 'सुदक्षिणा' सहित पुत्र लाभ की कामना से कुल गुरु वसिष्ठ के आश्रम में जाते हैं। वसिष्ठ उनकी व्यथा का कारण जान अपने आश्रम में निवास करने वाली कामधेनु पुत्री नन्दिनी नामक गौ की सेवा का परामर्श देते हैं।

द्वितीय सर्ग

द्वितीय सर्ग राजा दिलीप की गोभक्ति-परायणता प्रस्तुत करता है। राजा पत्नी सुदक्षिणा सहित एकाग्रचित्त से नन्दिनी की सेवा में संलग्न हो जाते हैं। कुछ काल व्यतीत होने पर नन्दिनी राजा के भक्ति-भाव की परीक्षा लेने को उद्यत होती है। वह चरती हुई, हिमालय पर्वत की कन्दरा में प्रविष्ट हो जाती है, गुफा

में एक सिंह नन्दिनी पर आक्रमण करता है। राजा नन्दिनी को मुक्त करने के लिए सिंह से याचना करते है। सिंह राजा का शरीर लेकर गाय को मुक्त करने को तैयार हो जाता है। राजा सिंह के समक्ष स्वशरीर अर्पण कर देते हैं। नन्दिनी राजा के इस भक्ति भाव से प्रसन्न हो पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देती है और अपना दुग्ध पीने का निर्देश देती है। राजा आश्रम में लौट कर महर्षि वसिष्ठ को सम्पूर्ण वृतांत से अवगत करा, गुरु की अनुमति से गाय का दूध पीते हैं तथा उद्देश्य की पूर्ति से प्रसन्न राजधानी लौट आते हैं।

तृतीय सर्ग

तृतीय सर्ग में रघु के जन्म, वर्धन, यौवराज्य का वर्णन है। अश्वमेध यज्ञायोजन कर रघु पिता दिलीप से राज्य ग्रहण करते हैं। दिलीप एवं सुदक्षिणा पुत्र को राज्य देकर तपोवन में सन्न्यास हेतु प्रस्थान करते हैं।

चतुर्थ सर्ग

चतुर्थ सर्ग में रघु-दिग्विजय के अनंतर विश्वजित यज्ञ की सम्पन्नता वर्णित है।

पञ्चम सर्ग

पञ्चम सर्ग रघु की दानशीलता से परिपूर्ण है, उनका राजकोष असीमित दानवृत्ति से रिक्त हो चुका है, इसी समय कौत्स नामक एक ब्रह्मचारी, गुरु दक्षिणा हेतु चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की याचना ले सभा में उपस्थित होता है। धनवेद कुबेर रघु के आक्रमण के भय से स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा करते हैं, ब्रह्मचारी कौत्स अभीष्ट मात्र में स्वर्ण मुद्राएं लेकर राजा को पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं।

षष्ठम सर्ग

छठे सर्ग में रघुपुत्र अज का जन्म एवं विदर्भ राजकन्या इन्दुमती से स्वयंवर विवाह का चित्रण है। अनेक देशों के भूपति स्वयंवर में उपस्थित हैं, किंतु एक गन्धर्व से प्राप्त सम्मोहन नामक अस्त्र की महिमा से अज ही इन्दुमती को आकृष्ट करते हैं और वरमाला उनके ही गले पड़ती है। विभिन्न देशों से आगत राजाओं के प्रसंग में अनेक व्यक्तिगत गुणों, वंशावली, शौर्य, समृद्धि और विशेषरूप से राज्य की भौगोलिक सीमाओं का समुचित वर्णन है।

सप्तम सर्ग

सप्तम सर्ग अज के नगरभ्रमण एवं इन्दुमती सहित अज के स्वनगर प्रस्थान को प्रस्तुत करता है।

अष्टम सर्ग

अष्टम सर्ग रघु के राज्यत्याग, दशरथ की उत्पत्ति, इन्दुमती की मृत्यु, अज के विलाप एवं शरीर त्याग से परिपूर्ण है।

नवम सर्ग

नवम सर्ग दशरथ-प्रशंसा से आरम्भ है। आखेट काल में श्रवण वध इसी सर्ग का अंश है।

दशम सर्ग

दशम सर्ग में राम आदि चारों भाइयों के जन्म की कथा और शैशव की लीलाएं चित्रित हैं।

ग्यारहवां सर्ग

ग्यारहवां सर्ग विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण के वन-गमन, धनुष यज्ञ दर्शन हेतु मिथिला प्रस्थान, धनुष भंजन, चारों भाइयों का सीता इत्यादि बहिनों से विवाह, परशुराम संवाद आख्यानों को प्रस्तुत करता है।

बारहवां सर्ग

बारहवें सर्ग में राजतिलक, माँ कैकेयी द्वारा वर माँगना, राम-लक्ष्मण व सीता का वनप्रस्थान, शूर्पणखा के नाक-कान काटना, सीता हरण, वानरराज सुग्रीव का राज्याभिषेक, राम-रावण युद्ध एवं रावण की राम के द्वारा पराजय कथा है।

तेरहवां सर्ग

तेरहवां सर्ग राम - सीता व लक्ष्मण के पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या प्रत्यागमन तथा भरत मिलन का चित्रण है।

चौदहवां सर्ग

चौदहवां सर्ग सीता गर्भधारण एवं राम द्वारा सीता परित्याग, लक्ष्मण का सीता को वाल्मीकि आश्रम में पहुँचाने के वृत्तांत को प्रस्तुत करता है।

पन्द्रहवां सर्ग

पन्द्रहवां सर्ग अश्वमेध यज्ञ, लव कुश - जन्म, 'जबूक वध, पृथ्वी का सीता को स्वयं में समाहित कर लेना तथा राम के स्वर्ग गमन तक की कथा से समाप्त होता है।

सोलहवां सर्ग

सोलहवें सर्ग से राम के वंशजों लव-कुश इत्यादि भ्राताओं का राज्य-शासन, परिणय, अयोध्या की नगरदेवी द्वारा याचना किये जाने पर कुश का अयोध्या में शासनसूत्र संभालना, कुश का रानियों के साथ जल-क्रीड़ा का सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है।

सत्रहवां सर्ग

सत्रहवें सर्ग में कुशपुत्र अतिथि के पराक्रम एवं यशोगाथा का वर्णन है।

अठारहवां सर्ग

अठारहवें सर्ग में अतिथिपुत्र निषध, निषधपुत्र नल, नल पुत्र पुण्डरीक, पुण्डरीक पुत्र क्षेमधंवा, क्षेमधंवा पुत्र देवानीक, देवानीक पुत्र अहीनग, अहीनग पुत्र पारियात्र, परियात्र पुत्र शिल, शिल पुत्र उन्नाभ, उन्नाभ पुत्र वज्रनाभ, वज्रनाभ पुत्र शंखण, शंखण पुत्र व्युषिताश्व, व्युषिताश्व पुत्र विश्वसह, विश्वसह पुत्र हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभ पुत्र कौशल्य, कौशल्य पुत्र पुष्य, पुष्य पुत्र ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धि पुत्र सुदर्शन समग्र वंशावली राजाओं के गुण परिचय को भी प्रस्तुत करती है।

उन्नीसवां सर्ग

उन्नीसवां सर्ग सूर्य वंश के अंतिम नृपति अग्निवर्ण के कामुक जीवन के भरपूर विलास का चित्रण करता है, अत्यधिक विलासी जीवन के परिणाम स्वरूप अग्निवर्ण क्षयरोग से पीड़ित हुआ। रोग के प्रभाव से दिन प्रतिदिन दुर्बल

होकर निस्संतान मृत्यु को प्राप्त हुआ। मृत्यु के पश्चात् प्रधान महिषी (गर्भवती) ने राज्य भार संभाला और मंत्रियों के परामर्श से राज्य को सुव्यस्थित किया।

कथा स्त्रोत

'रघुवंश' के स्त्रोत के लिए कालिदास महर्षि वाल्मीकि के प्रति विशेष श्रद्धाभाव रखते वाल्मीकि रामायण में बालकाण्ड, तीसरे सर्ग के नवें श्लोक तथा युद्धकाण्ड के प्रथम सर्ग के ग्यारहवें श्लोक में 'रघुवंश' शब्द का प्रयोग हुआ है और चतुर चितेरे कालिदास ने ग्रंथ का नामकरण के लिए वहीं से शब्द ग्रहण कर लिया है।

नवम सर्ग से पन्द्रहवें सर्ग तक कालिदास ने राम कथा के गान हेतु वाल्मीकि रामायण को आधार माना है। पन्द्रहवें सर्ग में वाल्मीकि को आदि कवि की अभिधा से सम्बोधित कर कवि ने मानो इसी तथ्य का संकेत दिया है-

वृत्तं रामस्य वाल्मीकेरू कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्यातां न शृण्वताम।
तद्गीतश्रवणणैकाग्रा संसदश्रुमुखी बभौ।
हिमनिष्यन्दिनी प्रातर्निर्वातेव वनस्थली।

सम्प्रति उपलब्ध वाल्मीकि रामायण में लगभग 24, 00 श्लोक हैं, जिनमें से कालिदास ने स्वावश्यकतानुरूप सामग्री ग्रहण की है, कुछ का स्पर्श किया है तो कुछ का नामोल्लेख मात्र। वाल्मीकि रामायण में वर्णित संक्षिप्त प्रसंगों का विस्तार एवं विस्तृत प्रसंगों का संक्षिप्तीकरण कवि की तूलिका का चमत्कार है। महत्त्वपूर्ण दृश्यांकन में वे चूके नहीं हैं और प्रांजलता के चित्रण में वे पीछे नहीं हटे हैं।

यह भी सम्भव है कि कालिदास के व्यक्तिगत पुस्तकालय में रामायण के अतिरिक्त सूर्यवंश सम्बद्ध अन्य साहित्य संचित रहा हो। निश्चित रूप से कवि ने राजाओं की सूची एवं तत्सम्बद्ध आख्यान अनेक स्त्रोतों से ग्रहण किये हैं, किंतु उनके द्वारा प्रयुक्त ये अनेक स्त्रोत अभी अन्धकार में हैं। पुराणों में भी सूर्यवंशी राजाओं की वंशावली मिलती है यद्यपि उस नामावली एवं रघुवंश की नामावली में पर्याप्त भेद है और उनके चरित व वैयक्तिक गुणों पर प्रकाश नहीं डाला गया है। नामावली का आधार विष्णु पुराण एवं सर्ग 14 की विषयवस्तु का आधार पद्मपुराण को माना जा सकता है।

महाकवि भास के 'प्रतिमानाटक' में और महाकवि कालिदास के 'रघुवंश' में दिलीप से लेकर राम तक का क्रम एक समान है। अतः सम्भव है दोनों कवियों की उपजीव्य सामग्री समान हो। रघुवंश के अठारहवें सर्ग में कवि द्वारा इक्कीस राजाओं का नामोल्लेख मात्र कर देना इस तथ्य का द्योतक है कि कालिदास को इन नरेशों के विषय में पर्याप्त सामग्री नहीं मिल सकी। अपूर्ण सामग्री को यथास्वरूप अगाध पाण्डित्य के भार से आक्रांत कर कवि जितना वाग्वैदग्ध प्रस्तुत किया सका, वह अतुलनीय व प्रशंसनीय है।

कुमार सम्भव और अभिज्ञान शाकुन्तलम् कालिदास की अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं।

कुमारसम्भव

कुमारसम्भव सत्रह सर्गों का महाकाव्य है। परम्परागत मान्यता है कि कालिदास ने आठ सर्गों तक ही इस महाकाव्य की रचना की थी। अवशिष्ट 9 सर्ग किसी परवर्ती कवि के द्वारा रचे हुए हैं। वल्लभदेव, मल्लिनाथ आदि प्राचीन विश्रुत टीकाकारों ने आठ सर्गों तक ही इस महाकाव्य पर अपनी टीकाएं लिखी हैं तथा काव्यशास्त्र के प्राचीन ग्रंथों में भी कुमारसम्भव से जितने उद्धरण मिलते हैं, वे आठवें सर्ग तक के ही हैं।

कुमारसम्भव का अर्थ

कुमारसम्भव का अर्थ है कुमार का जन्म। पार्वती के जन्म से लेकर शिव से उसके विवाह तक का कथानक ही आठवें सर्ग तक वर्णित है और कुमार के जन्म की कथा इसमें समाविष्ट नहीं है, अतः इसे अपूर्ण मानकर परवर्ती किसी कवि ने पूरा किया होगा - यह सम्भव है। एक परम्परागत मान्यता यह भी है कि आठवें सर्ग में उमा - महेश्वर के सम्भोगसुख का चित्रण करने के कारण कालिदास को शापग्रस्त होना पड़ा और फिर इस काव्य को वे पूर्ण न कर सके। आधुनिक विद्वानों में से कुछ का यह भी मत है कि कालिदास की दृष्टि में आठवें सर्ग में ही काव्य पूरा हो जाता है– शिव और पार्वती के अटूट प्रेम और मांगलिक दाम्पत्य में कुमार के जन्म की सम्भावना निर्देशित है।

विषयवस्तु

कुमारसम्भव का आरम्भ हिमालय के वर्णन के साथ होता है। पूर्व और पश्चिम के सागरों का अवगाहन कर यह हिमालय सारी धरती को नापने के लिये

मानदण्ड की भाँति खड़ा हुआ है। अप्सराएं उसकी उस धातुराशि से शृंगार करती हैं, जो बादलों के टुकड़ों पर लाल रंग अर्पित करने वाली अकाल सन्ध्या सी उसके शिखरों पर फैली हुई है। किरात इस हिमालय पर मृगया में मारे गये हाथियों के मार्ग को तुषार से धुल जाने पर भी उनके नखरन्ध्र से गिरे मुक्ताफलों से पहचान लेते हैं। विद्याधर सुन्दरियाँ उसके भोजपत्रों पर प्रेमपत्र लिखा करती हैं। हाथी उस हिमालय के सरल वृक्षों पर खुजली मिटाने को जब अपने कपोल रगड़ते हैं, तो उन वृक्षों से निकले क्षीर से हिमालय के शिखर दूर-दूर तक सुरभित हो जाते हैं।

पर्वतराज हिमालय

भागीरथी के निर्झरों की फुहारें लेकर बहने वाले पवन देवदारुओं को कंपाता जाता है और मयूरों के पिच्छों को बिखरा देता मृगों को खोजते किरात उस वायु का सेवन करते हैं। देवताओं ने उस हिमालय को देवतुल्य मान कर यज्ञ भाग का अधिकारी घोषित किया है, वह सारी धरती को धारण किये हुए है, इसलिए प्रजापति ने उसे सारे पर्वतों का राजा भी बना दिया है। ऐसे उस पर्वतराज हिमालय ने मुनियों के लिये भी माननीय पितरों की मानसी कन्या मैना से विवाह किया था। और उससे मैनाक नामक पुत्र हिमालय को प्राप्त हुआ था। फिर दक्ष के यज्ञ में पति के अपमान से खिन्न होकर देह का त्याग करने वाली सती ने भी मैना की कुक्षि से पार्वती के रूप में अवतार लिया। बाल्यकाल से पार्वती हिमालय की विशेष लाड़ली थी। धीरे-धीरे वह बड़ी होने लगी, तो उदित होने पर चन्द्रज्योत्स्ना की कलाएं जैसे बढ़ती हैं, वैसे ही उसमें अभिवृद्धि हुई। हिमालय उस कन्या से ऐसे ही विभूषित हुए जैसे दीपशिखा से दीपक, त्रिपथगा से स्वर्ग का पथ या संस्कारवती वाणी से मनीषी व्यक्ति। फिर नवयौवन ने पार्वती के देह में पदार्पण किया, तो उसका देह तूलिका से उन्मीलित चित्र की भाँति या सूर्य की किरणों से खिला दिये गये कमल की भाँति चतुरस्त्रशोभा से युक्त हो उठा।

नारद की भविष्यवाणी

एक दिन नारद विचरण करते-करते हिमालय के पास पहुँचे। पिता के पास बैठी पार्वती को देख कर उन्होंने यह भविष्यवाणी कर दी कि उनकी प्रिय पुत्री शिव की अर्द्धांगिनी बन कर रहेगी। इस कथन से विश्वस्त हिमालय ने पार्वती

को हिमालय के ही एक शिखर पर तपोलीन शंकर की पूजा - अर्चना के लिए प्रेरित किया। उन्हीं दिनों तारक नामक असुर से त्रस्त देवों ने ब्रह्मा से परित्रण की प्रार्थना की। ब्रह्मा ने कहा - महादेव के वीर्य से उत्पन्न पुत्र तारकासुर के नाश में समर्थ होगा अतः आयासपूर्वक शंकर का मन पार्वती की ओर आकृष्ट करें, क्योंकि शिव के वीर्य को धारण करने की सामर्थ्य केवल पार्वती में है। इन्द्र ने इन्द्रलोक पहुँच कर कामदेव का स्मरण किया, वह पुष्पधंवा तत्काल, आम्रमञ्जरी रूपी बाण ग्रहण किए हुए मित्र वसंत के साथ उपस्थित हो गया। इन्द्र ने उसे अपना अभिप्राय बताया।

बसंत की रूपश्री

शिव के समाधिस्थल पर पहुँच कर वसंत ने अपनी रूपश्री का जो प्रदर्शन किया, उससे कवि को प्रकृति के मञ्जुल रूप के वर्णन-कौशल का अवसर मिल गया है। पत्नी रति के साथ कामदेव के उपस्थित होने पर जड़-चेतन सभी कामातुर हो सम्भोग के लिए लालायित हो उठे - काष्ठागतस्नेहरसानुविद्धं द्वन्द्वानि भावं क्रिया शंकर की समाधि भंग हुई, पार्वती ने कमल के बीजों की माला गले में डाल दी, किंतु काम विकार के प्रभाव के पूर्व ही संयमी महादेव ने 'सम्मोहन' बाण चढ़ाए कामदेव को नेत्राग्नि से भस्म कर दिया और अंतर्धान हुए। पार्वती पिता के मनोरथ और रूपश्री की अवहेलना से तथा पतिहीना रति नववैधव्य की ज्वाला से दग्ध हुई। पति की राख को देखकर रति ने विलाप की, जो करुण निष्यन्दिनी प्रवाहित की, वह केवल अजविलाप की मार्मिकता से ही तुलनीय हो सकती है। पार्वती ने अपने रूप के गर्व से मुक्त हो तपस्या का संकल्प किया, क्योंकि जो प्रिय को न रिझा सके उस रूप से क्या लाभ - प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।

पार्वती की तप साधना

पर्णभोजन का भी परित्याग कर अपर्गी पार्वती ने अपने कोमलांगों को कठोर तप साधना से कठोरता कर लिया। तदनंतर एक तेजस्वी ब्रह्मचारी ने उपस्थित होकर शंकर के अमांगालिक वेश और 'मशान रूप अशुभ वासस्थान का उल्लेख कर उन्हें उनके लक्ष्य से विमुख करने का प्रयास किया। प्रिय के दोष-श्रवण में असमर्थ पार्वती ने ब्रह्मचारी के समक्ष खड़ा रहना उचित न समझा, किंतु वे हटतीं इसके पूर्व ही ब्रह्मचारी रूप शंकर अपने वास्तविक रूप में प्रकट

हुए। आराध्य प्रिय को सन्निकट देव पार्वती पुलकित-चकित हुईं और शिलाखण्ड द्वारा बाधित नदी के प्रवाह की भाँति रुक गईं- मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धु शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।

विवाह सन्देश भेजने का आग्रह

प्रणयोत्सुक शंकर से उन्होंने सखी को माध्यम बना पिता के पास विवाह सन्देश भेजने का आग्रह किया। शंकर ने सप्तर्षियों से हिमराज को विवाह प्रस्ताव पहुँचाने का निवेदन किया। सप्तर्षियों के चर्चा करते समय लज्जा नम्रमुखी पार्वती लीला कमल की पंखुड़ियाँ गिन रही थी -

एवं वादिनि देवर्षो पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्रणि गणयामास पार्वतीं।

विवाह

विवाहोल्लास प्रारम्भ हुआ, पार्वती ने नववधू का शृंगार किया, वर मण्डली ने प्रस्थान किया। भूतनाथ शंकर की अपूर्व बारात हिमालय पहुँची, राजधानी की समग्र नागरिकायें आकुलता पूर्वक वर-दर्शन को उमड़ पड़ीं, विवाह सम्पन्न हुआ। अब कामदेव का आविर्भाव आवश्यक था, शंकर ने उसे पुनर्जन्म की अनुमति दी। अलौकिक दिव्य कोटि के दम्पती सामान्य प्रणयी की भाँति काम-केलियों में चिरकाल के लिए मग्न हुअ। इतनी कथा आठवें सर्ग तक वर्णित है।

कार्तिकेय का जन्म

एक दिन सम्भोगकाल में शिव ने देखा कि शयनकक्ष में एक शुभ्रवर्ण कबूतर बैठा है। उस अग्नि रूप कबूतर को देवदूत जानकर उन्होंने अपना क्रोध शांत किया एवं सुरत-क्रीड़ा के पश्चात् अपना वीर्य उसे दिया। शिववीर्य के प्रचण्ड ताप को सहने में असमर्थ अग्नि ने शीतलता हेतु गंगा में स्नान किया, वीर्य गंगा में प्रवाहित हुआ, गंगा ने उसे सादर स्वीकार किया, किंतु गंगा भी वीर्यताप से उबल उठी। वह वीर्य गंगा में स्नान करती छह कृत्तिकाओं में समाहित हो गर्भरूप हो गया। ताप और लाज से व्याकुल कृत्तिकाओं ने उसे वेतस के वन में छोड़ दिया। तेजस्वी भ्रूण गंगामृत पान कर कृत्तिकाओं के संरक्षण में वर्द्धित होने लगा। तभी विमान से जाते समय शिव - पार्वती की दृष्टि शिशु पर पड़ी और

वे उस अनुपम षण्मुख बालक को स्वसंतान जानकर साथ ले आए। केवल छह दिनों में कुमार शरीर और बुद्धि से परिपक्व हो युवा हो गया। इन्द्रादि देवों के अनुरोध पर शंकर ने कुमार कार्तिकेय को देवसेना का सेनापति नियुक्त किया। कुमार ने अपने अद्‌भुत शौर्य से भयंकर युद्ध करते हुए तारकसुर का वध कर तीनों लोकों को सुख पहुँचाया।

कुमारसम्भव की विलक्षणता

कुमारसम्भव की सर्वातिशायिनी विलक्षणता है- प्रणय की गम्भीर गहनता जिसमें रूप पर्यवसित हो जाता है, जिसमें वासना दग्ध हो जाती है तब जो नवनीत बचता है वह सामान्य होकर भी सामान्य नहीं होता, अपितु युग-युग तक विशुद्ध, पवित्रता और मंगल के प्रतीक रूप में स्थायी रहता है। विश्वन्द्य कवि रवीन्द्र के शब्दों में 'कालिदास ने अनाहूत प्रेम के उस उन्मत्त सौन्दर्य की उपेक्षा नहीं की है, उसे तरुण लावण्य के समुज्ज्वल रंगों से चित्रित किया है। किंतु इसी उज्ज्वलता में उन्होंने अपना काव्य समाप्त नहीं किया। महाभारत के सारे कर्मों का अंत जैसे महाप्रस्थान में हुआ, वैसे ही 'कुमारसम्भव' के सारे प्रेम का वेग मंगल-मिलन में समाप्त हुआ है।'

मेघदूत

मेघदूत महाकवि कालिदास की अप्रतिम रचना है। अकेली यह रचना ही उन्हें 'कविकुल गुरु' उपाधि से मण्डित करने में समर्थ है। भाषा, भावप्रवणता, रस, छन्द और चरित्र-चित्रण समस्त दृष्टियों से मेघदूत अनुपम खण्डकाव्य है। सहृदय रसिकों ने मुक्त कण्ठ से इसकी सराहना की है। समीक्षकों ने इसे न केवल संस्कृत जगत् में अपितु विश्व साहित्य में श्रेष्ठ काव्य के रूप में अंकित किया है। मेघदूत में कथानक का अभाव सा है। वस्तुतः यह प्रणयकार हृदय की अभिव्यक्ति है।

मेघदूत के दो भाग हैं -
पूर्वमेघ एवं
उत्तरमेघ।

विषयवस्तु

अलका नगरी के अधिपति धनराज कुबेर अपने सेवक यक्ष को कर्तव्य-प्रमाद के कारण एक वर्ष के लिए नगर - निष्कासन का शाप दे देते हैं। वह यक्ष

अलका नगरी से सुदूर दक्षिण दिशा में रामगिरि के आश्रमों में निवास करने लगता है। सद्यविवाहित यक्ष जैसे - तैसे आठ माह व्यतीत कर लेता है, किंतु जब वह आषाढ़ मास के पहले दिन रामगिरि पर एक मेघखण्ड को देखता है, तो पत्नी यक्षी की स्मृति से व्याकुल हो उठता है। वह यह सोचकर कि मेघ अलकापुरी पहुँचेगा तो प्रेयसी यक्षी की क्या दशा होगी, अधीर हो जाता है और प्रिया के जीवन की रक्षा के लिए सन्देश भेजने का निर्णय करता है। मेघ को ही सर्वोत्तम पात्र के रूप में पाकर यथोचित सत्कार के अनंतर उससे दूतकार्य के लिए निवेदन करता है। रामगिरि से विदा लेने का अनुरोध करने के पश्चात् यक्ष मेघ को रामगिरि से अलका तक का मार्ग सविस्तार बताता है। मार्ग में कौन-कौन से पर्वत पड़ेंगे जिन पर कुछ क्षण के लिए मेघ को विश्राम करना है, कौन-कौन सी नदियाँ जिनमें मेघ को थोड़ा जल ग्रहण करना है और कौन-कौन से ग्राम अथवा नगर पड़ेंगे, जहाँ बरसा कर उसे शीतलता प्रदान करना है या नगरों का अवलोकन करना है, इन सबका उल्लेख करता है। उज्जयिनी, विदिशा, दशपुर आदि नगरों, ब्रह्मावर्त, कनखल आदि तीर्थों तथा वेत्रवती, गम्भीरा आदि नदियों को पार कर मेघ हिमालय और उस पर बसी अलका नगरी तक पहुँचने की कल्पना यक्ष करता है। उत्तरमेघ में अलकानगरी, यक्ष का घर, उसकी प्रिया और प्रिया के लिए उसका सन्देश- यह विषयवस्तु है।

मेघदूत की टीकायें

डॉ. एन. पी. उन्नि ने मेघूदत पर लिखी 63 टीकाओं का विवरण दिया है। इनमें सुप्रसिद्ध टीकाकार दिनकर मिश्र, पूर्ण सरस्वती, मालतीमाधव आदि प्रबन्धों पर विश्रुत टीका लिखने वाले जगद्धर, परमेश्वर, सारोद्धारिणी का अज्ञात नामा लेखक, महिमसंघगणि, सुमतिविजय, विजयसूरिगणि, भरतल्लिक, कृष्णपति आदि की टीकायें उल्लेखनीय हैं।

टीकाकारों द्वारा मेघदूत का समीक्षण

नायक-विचार -

टीकाकारों ने मेघदूत के विषय में सूक्ष्म उद्भावनाओं तथा तात्त्विक विश्लेषण के साथ कृति का गहन अनुशीलन प्रस्तुत किया है। कालिदास ने अपने इस काव्य में नायक यक्ष का कहीं भी नाम निर्दिष्ट नहीं किया और न उसकी

प्रिया यक्षिणी का ही। काव्य का पहला ही पद 'कश्चित' है- 'कोई' अनाम यक्ष इसका नायक है। इस 'कश्चित' पद के पीछे निहित कवि के तात्पर्य पर अनेक टीकाकारों ने विचार किया है। टीकाकार सुमतिविजय ने तो 'कश्चित' पद के पीछे यक्ष के अपराध के प्रति भर्त्सना का भाव पाया है और प्रमाण के लिए निम्नलिखित प्राचीन पद्य उद्धत किया है-

भर्तुराज्ञां न कुर्वंति ये च विश्वासघातकारू।
तेषां नानापि न ग्राह्यं काव्यारम्भे विशेषतरू।

टीकाकार कृष्णपति का भी यहीं मत है कि अपना स्वयं का, गुरुजन का तथा अभिशप्त व्यक्ति का नाम नहीं लिया जाना चाहिये - इस विधान का पालन करने के लिये कवि ने यक्ष का नाम नहीं लिया।

टीकाकार हरगोविन्द ने भी इसी मत को दोहराते हुए भरतमुनि की यह कारिका भी उद्धत की है, जिसका स्रोत अनुसन्धेय है-

खण्डकाव्यमुखं कुर्यात कश्चिदित्यादिभिरू पदैरू।
सर्गबन्धेवश्यं तु नाम कार्य सुशोभनम।

तदनुसार खण्डकाव्य में नायक का नाम निर्देश न करके 'कश्चित' आदि पदों का प्रयोग करना चाहिये। हरगोविन्द ने वैकल्पिक रूप से यह समाधान भी दिया है कि अभिशप्त या दुहखित पात्र का नामग्रहण नहीं करना चाहिये।

टीकाकार भरतमल्लिक ने 'कश्चित' पद की व्याख्या में छह मत प्रस्तुत किये हैं, जिनमें तीन मत तो उक्त टीकाकारों के ही हैं।

चौथे मत के अनुसार अस्ति कश्चिद वाग्विशेषय विद्योत्तमा की इस उक्ति का अनुरोध ही कश्चित पद के प्रयोग का कारण है।

पाँचवें मत के अनुसार मेघदूत की कथावस्तु का प्रख्यात न होकर कल्पित होना इस सर्वनाम के प्रयोग का हेतु है।

मेघदूत के स्त्रोत

मेघदूत के स्त्रोत के विषय में इन टीकाकारों ने विशद विचार किया है। दक्षिणावर्तनाथ का कथन है कि रामायण से सीता के प्रति हनुमान के मुख से राम के द्वारा प्रेषित सन्देश को मन में रख कर उसके पात्रों का मेघदूत के पात्रों के रूप में उपस्थित करते हुए कवि कालिदास ने इस काव्य की रचना की - इल खलु कविरू सीतां प्रति हनूमता हारित सन्देश हृदयेन, समुद्वहन तत्स्थानीयनायकाद्युत्पादनेन सन्देशं करोति।

मल्लिनाथ ने दक्षिणावर्तनाथ की व्याख्या का आधार स्वीकार करते हुए रामायण की प्रेरणा मेघदूत की रचना में पृष्ठभूमि माना है। पर रामायण के पात्रों और मेघदूत के पात्रों के अध्यवसान का उन्होंने न समर्थन किया है, न विरोध जबकि पूर्णसरस्वती ने रामायण से कालिदास को प्रेरित मानते हुए दक्षिणावर्तनाथ की इस मान्यता का कड़ा विरोध किया है कि यक्ष-यक्षिणी-वृत्तांत में राम-सीता-वृत्तांत की समाधि है। उनका तर्क है कि यदि मेघदूत में सीता- राघववृत्त का अध्यवसान होता तो कवि उसका उपमान के रूप में या अन्यथा पृथक् उल्लेख क्यों करता?

पर इसके साथ ही पूर्णसरस्वती ने कालिदास को 'रामायण रसायन परायण महाकवि' कह कर उनके कई पद्यों में रामायण की छाया निदर्शित की है। पूर्णसरस्वती ने मेघदूत पर महाभारत का भी प्रभाव माना है। स्थूणाकर्ण नामक यक्ष को कुबेर द्वारा शाप दिये जाने की महाभारतोक्त कथा को उन्होंने विस्तार से साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार नलकूबर और मणिग्रीव नामक यक्षों के शापग्रस्त होने का वृत्तांत भी मेघदूत की रचना में प्रेरक हो सकता है।

तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेघदूत की रचना प्रक्रिया में आदि कवि वाल्मीकि की सर्वातिशायी प्रतिभा और सीताराघव वृत्तांत तथा हनुमत्सन्देश प्रकरण की प्रेरणा आद्यांत बनी रही है। दक्षिणावर्तनाथ तथा पूर्णसरस्वती आदि टीकाकरों ने तो अनुसन्धानपूर्वक रामायण के ऐसे अनेक स्थल मेघदूत के पद्य की व्याख्या में उद्धत किये हैं, जिनका अप्रस्तुत विधान, कल्पना या भाव लेकर कवि ने अन्यच्छाया योनि काव्य का अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत में प्रस्तुत किया है। मेघदूत की यक्षिणी के लिये कवि ने उपमा उत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत में प्रस्तुत किया है। मेघदूत की यक्षिणी के लिए कवि ने उपमा दी है - यक्ष को लगता है कि उसकी प्रिया शिशिर में मुरझाई पद्मिनी जैसी हो गयी होगी।

पूर्णसरस्वती के अनुसार यह उत्प्रेक्षा रामायण में सीतावर्णन के निम्नलिखित पद्य पर आधारित है-

हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरम्परया निपीड्यमाना।
सहचररहितेव चक्रवाकी जनकसुता कृपणां दशा प्रपन्ना।

इसी प्रकार यक्षिणी के वर्णन में कवि ने प्रेम की अनन्यनिष्ठ भावोत्तानता की जो कारुणिक छवि अंकित की है, उसका भी आधार रामायण में हनुमान के द्वारा सीता के दर्शन के समय की गयी इस अभिव्यक्ति में पूर्णसरस्वती ने पाया है-

नैषा पश्यति राक्षस्यों नेमान पुष्पफलद्रुमान।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति।
नैव दंशांश्च मशकान न कीटान न सरीसृपान
राघवापनयेद गात्रत त्वदगतेनांतरात्मना।

इसी प्रकार यक्ष जब कहता है- हे मेघ तुम्हारी सखी यक्षिणी का मन मेरे लिये स्नेह से लबालब भरा है, तो पूर्णसरस्वती इसमें सीता की प्रेममयता प्रतिबिम्बित पाते हैं-

'अन्योन्या राघवेणाहं भास्कर प्रभा यथा।'

इसी प्रकार दक्षिणावर्तनाथ तथा पूर्णसरस्वती ने मेघदूत के अनेक पद्यों में रामायण से भावसाम्य तथा रामायण की प्रेरणा का दिग्दर्शन कराया है। उदाहरणार्थ-

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलय श्रीतुलामेष्यतीति।

मछली के उछलने से हिलते नीलकमल का नेत्र के लिए यह उपमान वाल्मीकि ने विरह-विधुरा सीता के लिए सदृश प्रसंग में प्रयुक्त किया- 'प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवातिताम्रम।

अगले छन्द में कालिदास ने यक्ष के मुख से पुनः उत्प्रेक्षा करायी है- यास्यत्यूरुरू सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम।'

यहाँ भी वाल्मीकि की इस अभिव्यक्ति की छाया इन टीकाकारों ने देखी है-

'प्रस्पन्दमानरू पुनरुरस्था रामरू पुरस्तात स्थितमाचचक्षे।'

वस्तुतःदूतकाव्य की परम्परा का मूल वैदिक संहिताओं में है, जिस पर 'सन्देशकाव्य विषयक अध्याय में विचार किया गया है।

कथा की पृष्ठभूमि

मेघदूत में महाकाव्य - खण्डकाव्यादि के समान कथा कहना कवि का लक्ष्य नहीं है। कथा का संकेत पहले पद्य में बहुत सूक्ष्म रूप से करके वह यक्ष की मनोदशाओं की गहन मीमांसा तथा तज्जन्य रससिद्धि में तल्लीन हो जाता है। कुछ टीकाकारों ने योगवा सिष्ठ में एक पक्ष के शापग्रस्त होने की कथा को मेघदूत के कथानक की इस भूमिका का आधार माना जाता है। तो जैन टीकाकारों ने अलग-अलग रूप में इस कथा का प्रतिपादन किया है। एक कथा में कुबेर

को पूजा के लिए सद्योविकसित कमलपुष्प देने के स्थान पर एक दिन पूर्व तोड़े गये बासी पुष्प देने पर यक्ष शापग्रस्त होता है। अन्य कथा में कुबेर के उद्यान का द्वार असावधानी से खुला छोड़ देने पर ऐरावत के द्वारा घुस कर उद्यान तहस-नहस कर दिये जाने के कारण। अन्य कथा में कुबेर के लिए यक्ष ने जो पुष्पशय्या बनायी थी, उस पर स्वयं सो जाने के अपराध के कारण उसे दण्ड विधान दिलाया गया है। एक अन्य कथा में वह पूजा के लिये निर्मित माला पहले अपनी प्रिया को पहना देता है। वस्तुतः मेघदूत में यक्ष की भावाकुलता और यक्ष – यक्षिणी के प्रगाढ़ अनुराग के चित्रण के आधार पर टीकाकारों ने अपने-अपने ढंग से इस प्रकार की कथाओं की कल्पना कर डाली है।

बौद्ध साहित्य में मेघदूत का कथा-स्त्रोत

कतिपय आधुनिक विद्वानों ने मेघदूत की कथाभूमि का आधार प्राचीन बौद्ध वांगमय में माना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि त्रिपिटक साहित्य में कुछ ऐसे प्रसंग मिलते हैं, जिनमें दौत्य तथा प्रणायिनी के प्रति करुण सन्देश का निरुपण है। कालिदास के लिए ये प्रसंग प्रेरक थे अथवा नहीं यह विचारणीय है। दीघनिकाय के सक्कपन्हसुत्त में सक्क नामक व्यक्ति बुद्ध के पास स्वयं न जाकर पंचशिख नामक गन्धर्व के द्वारा सन्देश भेजना है, और पंचशिख सन्देश में जो प्रस्तुत करता है, उनका विषय श्रृंगार तथा प्रेम है और भावधारा मेघदूत के सदृश है। बौद्धों की मान्यता है कि श्रृंगारित होते हुए भी इन गाथाओं में दार्शनिक अर्थ अंतर्निहित है। किंतु इन गाथाओं में पंचशिख तथा मद्दा सूरियवच्चसा के प्रणयानुराग का उद्घात भी हुआ है और पंचशिख के कथनों में यक्ष की अभिव्यक्ति से साम्य भी है।

रायज डेविडस तथा चाइल्डर्स की यह भी मान्यता है कि कालिदास को अलकानगरी की परिकल्पना बौद्ध साहित्य में महापरिनिज्बानसुत्त में वर्णित देवों की राजधानी अलकनन्दा से मिली है।

मेघदूत की आत्मकथात्मकता

कतिपय टीकाकारों ने मेघदूत में स्वयं कवि के द्वारा अपने स्वयं के सम्बन्ध में परोक्ष रूप से संकेत या सन्दर्भ दिये जाने की सम्भावना पर भी विचार किया है। अनुश्रुति है कि कालिदास ने विक्रमादित्य राजा की भगिनी और अपनी प्रणयिनी के विरह में यह काव्य लिखा था तथा इसके नायक वे स्वयं हैं।

चौदहवीं शताब्दी में केरल में मणिप्रवालम शैली में लिखित काकदूत नामक काव्य में कहा गया है–

स्वस्त्रे पूर्वं महितनृपतेर्विक्रमादित्यनाम्नः
पोक्काश्ं्चक्रे तरुणजलदं कालिदास कवीन्द्ररू।

महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी राजा विक्रमादित्य द्वारा कालिदास को प्रवरसेन के पास भेजे जाने तथा कवि द्वारा इस प्रवासावधि में 'कुंतलेश्वरदौत्य' की रचना करने का संकेत दिया है।

ऐसी स्थिति में टीकाकारों का मेघदूत के विविध वर्णनों तथा उल्लेखों में कवि के आत्मानुभव की छाया खोजने का प्रयास करना स्वाभाविक ही है। मेघदूत के पद्य में 'निचुल' तथा 'दिङ्नाग' इन दो शब्दों के प्रयोग के आधार पर टीकाकारों का अनुमान है कि कवि कालिदास ने यहाँ अपने समय के निचुल कवि तथा दिङ्नाग नामक पण्डित का उल्लेख किया है। दक्षिणावर्तनाथ का कथन है कि निचुल कवि कालिदास के मित्र थे, यहाँ तक कि निचुल कवि का बनाया एक पद्य भी दक्षिणावर्तनाथ ने उद्धत किया है। दिङ्नाग पण्डित अपने 'स्थूलहस्तावलेप' के साथ कालिदास की कटु आलोचना करते थे। कवि ने इस पद में उन पर कटाक्ष किया है।

दक्षिणावर्तनाथ का अनुगमन करते हुए मल्लिनाथ ने भी इस किंवदंती को मान्यता दी है।

रससृष्टि

मेघदूत विप्रलम्भ श्रृंगार का संस्कृत साहित्य में सर्वोत्कृष्ट काव्य कहा जा सकता है। विरह वेदना की तीव्रता, प्रेम की अनन्यता तथा भावैकतानता का ऐसा अनूठा चित्रण, वह भी गम्भीर जीवनदृष्टि तथा सांस्कृतिक मूल्यबोध के साथ, अन्यत्र नहीं मिलता। कवि ने अपना काव्य उस यक्ष की उस मनोदशा के चित्रण के साथ आरम्भ किया है, जब रामगिरि पर अभिशप्त जीवन व्यतीत करते-करते उसने किसी तरह आठ महीने तो बिता दिये हैं। मिलन का समय निकट आता जा रहा है, उसकी प्रिया के लिये चिंता और उससे मिलने की आतुरता बढ़ती जा रही है। यक्ष बावला और अर्धविक्षिप्त सा हो गया है। ऐसे में वह स्वप्न, कल्पना और अभिव्यक्ति के द्वारा अपने आप को जिलाये रखना चाहता है। उत्कृट जिजीविषा, भावसान्द्रता और मनुष्य के कल्पनालोक की रम्यता का बेजोड़ समवाय मेघदूत में हम अनुभव करते हैं। हृदय की सुकुमारता और प्रेम के प्रसार

का भी बोध मेघदूत देता है, वह भारतीय साहित्य में सुदुर्लभ है। यक्ष का चित्त कामातुर है, पर प्रेम और विरह की आंच उसके कलुष को धोती चली गयी है। इस प्रकार मेघदूत की रससृष्टि में मनोविज्ञान और चित्त के संस्कार की प्रक्रिया को कविप्रतिभा ने बड़ी कुशलता से मेघदूत में पिरों दिया है।

छन्दोविधान तथा भाषाशैली

मेघदूत में आद्यांत केवल 'मन्दाक्रांता' छंद का ही प्रयोग है। इस छन्द की विशिष्ट लय तथा यति से यह समग्र काव्य वेदना, उच्छ्वास-निःश्वास तथा मेघ की द्रुतविलम्बित गति का अनुभव देता है। वस्तुतः कालिदास के द्वारा इस छ्न्द के इतने सटीक प्रयोग के कारण ही आचार्य-परम्परा में यह मान्यता स्थापित हुई कि वर्षा, प्रवास तथा व्यसन के वर्णन के लिये 'मन्दाक्रांता छन्द' विशेष उपयुक्त है। क्षेमेन्द्र कालिदास के मन्दाक्रांता-प्रयोग की सराहना करते हुए कहते हैं -

प्रावृटप्रवास-व्यसने मन्दाक्रांता विराजते।

इस छन्द की विशिष्ट संरचना गति, लय, त्वरा और मंथरता का एक साथ बोथ कराती है और कालिदास ने तदनुरूप की सारे काव्य में भाषा और पदावली का भी अनुकूल प्रयोग किया है, जिसमें यक्ष के अंतर्जगत तथा बाह्य जगत् उसके मन की आतुरता और गम्भीरता, व्यथा और विवेक तथा मेघ को शीध्र भेजने और त्वरिक गति के लिए उसका निर्देश, फिर भी सारे देश में प्रत्येक सुरम्य या पवित्र स्थल पर अटक-अटक कर उसे आगे ले जाने की चाह-इन सबका पर्यावरण इस विशिष्ट भाषा-शैली के द्वारा रचता चला गया है। त्वरा और मंथरता दोनों का भाव समेकित करती हुई शब्दावली भी सजल होकर कवि ने यहाँ गूंथी है - जो लघुगतिः (16), गंतुमाशु व्यस्येत (23), वाहयेदध्वशेषम-मन्दायंते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः (41), उत्पतोदङ्मुखः खम-आदि में पदावली की गत्यात्मकता और त्वरा की अभिव्यक्ति तथा 'खिन्नः खिन्न शिखरिषु पदं न्यस्य गंतासि यत्र, क्षीणरू क्षीणः परिलघु पयः श्रोतसां चोपभुज्य - (13), स्थित्वा तस्मिन वनचरवधूमुक्तकुंङ्जे मुहूर्तम - (19), कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते (23) नीचौराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतोरू (26), स्थातव्य ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः (37), नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात खिन्नविद्युत्कलत्रः (41), प्रस्थान ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि (44), नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम- (65) - ठहर-ठहर कर अटक-अटक कर आगे

बढ़ने का भाव प्रकट करती चलती है। वस्तुतः मेघदूत छन्दोविधान और भाषा-शैली की दृष्टि से संस्कृत साहित्य की अनुपम निधि है।

ऋतुसंहार

ऋतुसंहार महाकवि कालिदास की प्रथम रचना है। निश्चित रूप से जो औदात्य तथा सौन्दर्य महाकवि के अन्य काव्यों से प्राप्त होता है, उसका यहाँ अभाव है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में ऋतुसंहार ही पहली ऐसी रचना है, जिसमें भारतवर्ष में प्राप्त समस्त छह ऋतुओं का स्वतंत्र रूप से तथा क्रमशः निरूपण किया गया है। आलोचकों का कहना है कि कवि ने विक्रमादित्य का राज्याश्रय प्राप्त होने के पूर्व ही इसकी रचना की होगी और यह नवयौवन की अवस्था में रचा गया होगा।

विवाद

कुछ विद्वान् ऋतुसंहार को कालिदास की कृति नहीं मानते। इस पक्ष में प्रायः तीन तर्क दिये जाते हैं-

ऋतुसंहार में कालिदास की कमनीय शैली नहीं है।
काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में इसके उद्धरण प्राप्त नहीं होते और
मल्लिनाथ ने इस पर टीका नहीं लिखी है।

कालिदास की प्रथम रचना

ऋतुसंहार को कालिदास की प्रथम रचना स्वीकार किया गया है। अतः प्रथम सोपान होने के कारण रघुवंश अथवा शाकुंतलम जैसी परिपक्वता का अभाव स्वाभाविक है। काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में ऋतुसंहार के उद्धरण आलङ्कारिकों ने इसलिए नहीं दिये कि महाकवि कालिदास के ही अधिक प्रौढ़ उदाहरण विद्यमान थे। मल्लिनाथ ने भी सरल ग्रंथ होने के कारण इस पर टीका नहीं लिखी होगी। इस प्रकार ये तर्क कमजोर है। वस्तुतः ऋतुसंहार के पर्यालोचन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसमें कालिदासीय प्रतिभा बीज-रूप में विद्यमान है। ऋतुसंहार में छह सर्ग हैं। इन सर्गों में क्रमशः छह ऋतुओं -

1. ग्रीष्म
2. वर्षा
3. शरद

4. हेमंत
5. शिशिर तथा
6. बसंत का चित्रण किया गया है।

यथार्थ दृष्टि–

ऋतुसंहार में कविकल्पना की मनोहारिता भी आकर्षित करती है तथा कवि का यथार्थबोध भी। पहला ही पद्य ग्रीष्म की प्रखरता तथा संताप के वर्णन से आरम्भ होता है। इसके आगे कवि कहता है कि धूल के बवंडर उठ रहे हैं, कड़ी धूप से धरती दरक रही है, प्रिया के वियोग से दग्ध मानस वाले प्रवासी तो इस दृश्य को देख तक नहीं पा रहे हैं प्यास से चटकते कण्ठ वाले मृग एक जंगल से दूसरे जंगल की ओर भाग रहे हैं। ग्रीष्म ने वन के प्राणियों को ऐसा आकुल कर दिया है कि सांप मयूर के पिच्छ के नीचे धूप से बचने को आ बैठा है और मयूर को उसकी खबर नहीं। प्यास से सिंह का मृगया का उद्यम ठंडा पड़ गया है, जीभ लटकाये हाँफता हुआ वह पास से निकलते हिरणों पर भी आक्रमण नहीं कर रहा। तृषा से व्याकुल हाथियों ने भी सिंह से भय खाना छोड़ दिया है। शूकर भद्रमुस्ता से युक्त सूखते कीचड़ मात्र बचे सरोवर की धरती में धँसे से जा रहे हैं ग्रीष्मवर्णन के इस पहले सर्ग में वनप्रांत की भीषणता का वास्तविक चित्र कवि ने अत्यंत विशद रूप में अंकित कर दिया है। दावाग्नि से जल कर काष्ठ मात्र बचे वृक्ष, सूखते पत्तों का जहाँ–तहाँ ढेर और सूखे हुए सरोवर–इन सबका विस्तार देखने पर चित्त को भयभीत कर डालता है दावाग्नि का वर्णन भी कालिदास ने इसी यथार्थ दृष्टि से किया है।

ऋतुसंहार का भौगोलिक परिवेश

ऋतुसंहार की रचना के समय कवि विन्ध्य के आसपास के क्षेत्र में रम रहा था, ऐसा इस रचना के वर्णनों से स्पष्ट होता है। पहले सर्ग में भीषण और दुर्गम कांतारों का उल्लेख बाणभट्ट के 'विन्ध्याटवी वर्णन' का स्मारक है। जिन पशु–पक्षियों तथा वनस्पतियों का वर्णन किया गया है, वे भी विन्ध्य क्षेत्र में बहुतायत से पाये जाते हैं। यदि ग्रीष्म वर्णन में कवि विन्ध्य के वनों की मनोहारिता से आकर्षित है–

वनानि वैन्ध्यानि हरंति मानसं
विभूषितान्युद्गतपल्लवैर्द्रुमैरू।

बादलों ने विन्ध्य का अभिषेक कर डाला हैं, जो अभी तक दावाग्नि से झुलस रहा था। अब वह आह्लादित हो उठा है–

अतिशयपरुषाभिर्दाववह्वेरू शिखाभिः
समुपजनिततापं ह्लादयंतीव विन्ध्यम ।

विषयवस्तु

ऋतुसंहार कालिदास की काव्ययात्र का पहला पड़ाव लगता है। किशोरावस्था में होने वाले सौन्दर्य के प्रति आकर्षण की यहाँ प्रधानता है। कवि ने ऋतुओं के वर्णन में प्रकृति चित्रण करने के साथ-साथ कामिजनों की विलासिता का भी निरूपण किया है। यह कहना उपयुक्त होगा कि ऋतुसंहार में प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण गौण है और श्रृङ्गारित वर्णन प्रधान। प्रायः प्रत्येक सर्ग में कुछ पद्यों में कवि ने अपनी प्रिया को सम्बोधित किया है। ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर और वसंत ऋतुओं का वर्णन तो प्रिया के सम्बोधन से ही प्रारम्भ होता है। कहीं-कहीं रसिक सहृदयों को भी सम्बोधित किया गया है। कवि प्रत्येक सर्ग में ऋतुओं का चित्रण करने के साथ-साथ ऋतुओं का स्त्री-पुरुषों पर क्या प्रभाव होता है, इसका भी वर्णन किया है। ऋतुसंहार में कथानक का अभाव है। ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद् का वर्णन प्रस्तुत करने वाले प्रथम तीन सर्गो में नैसर्गिक सुषमा के अनुरूप अतिशय मनोहर कल्पनाओं के साथ नयनाभिराम चित्र हैं।

हेमंत के वर्णन

हेमंत के वर्णन में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का निरूपण कम और भोग-विलास का वर्णन आधिक किया है। यहाँ सम्भोग शृङ्गार का चित्रण अधिक है, प्रकृति का वर्णन कम। वस्तुतः अंतिम तीन सर्गों में कवि ने उद्दीपन सामग्री का सम्भार प्रस्तुत कर दिया है।

षष्ठ सर्ग

षष्ठ सर्ग सबसे बड़ा है। इस सर्ग में कालिदास ने अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर चित्रण किया है। कुछेक पद्यों में तो प्रकृति का वर्णन है, किंतु अधिंकाश पद्यों में वासंतिक वातावरण से प्रभावित मानव-मन का चित्रण है। इस प्रकार वसंत का चित्रण प्रायः कामोद्दीपक रूप में किया गया है। प्रस्तुत पद्यों में वासंतिक सुषमा का बहुत ही सुन्दर निरूपण है–

द्रुमारू सपुष्पारू सलित सपद्मं स्त्रियरू सकायारू पवनरूसुगन्धिरू।
सुखारू प्रदोषा दिवसाश्च रम्यारू सर्व प्रिये! चारुतरं वसंते।
वापीजलानां मणिमेखलाना शशाङ्कभासां प्रमदाजनानाम्।
चूतद्रुमाणां कुसुमांवितानां ददाति सौभाग्यमयं वसंतरू।

वृक्ष फूलों से लद गये हैं। जल में कमल खिल उठे हैं, स्त्रियों के मन में काम जाग उठा है। पवन सुगन्ध से भर गया है। सन्ध्यायें सुखद होने लगी हैं और दिन अच्छे लगने लगें हैं। प्रिये! बसंत ऋतु में प्रत्येक वस्तु पहले से अधिक सुन्दर हो गयी है। बसंत ने बावलियों के जलों को, मणियों से निर्मित मेखलाओं को चन्द्रमा की चाँदनी को, प्रमदाओं को, आम के वृक्षों को सौभाग्य प्रदान कर दिया है। इस प्रकार वह कौन सी वस्तु है, जो बसंत में रमणीय नहीं हो जाती।

ऋतुसंहार का काव्यसौन्दर्य

ऋतुसंहार एक महान् कवि की प्रतिभा के प्रथम परिस्पन्द की श्रेष्ठ और सरस अभिव्यक्ति है। टीकाकार मणिराम का यह कथन सत्य है कि इस काव्य की उपेक्षा होती है। इस उपेक्षा का कारण यही प्रतीत होता है कि ऋतुसंहार के पश्चात् रची गयी काव्यकृतियों में कवि की जीवनदृष्टि विकसित हुई है, संवेदना और मनोविज्ञान के ज्ञान में प्रौढ़ता आयी है तथा इन कृतियों में परिष्कृत सौन्दर्य. चेतना के साथ उदात्त जीवनमूल्यों तथा सांस्कृतिक बोध को भी अभिव्यक्ति मिली है। स्वभावतः ही कवि की परवर्ती श्रेष्ठ कृतियों की तुलना में ऋतुसंहार जैसी लघुकाय और आरम्भिक कृति उपेक्षित होती चली आयी है, तथापि कल्पनाओं की कमनीयता, भाषा की प्रौढ़ता और सरलता की दृष्टि से यह कृति महत्त्वपूर्ण है। मेघदूत, कुमारसम्भव तथा रघुवंश के परिणति प्रज्ञ तथा परिपक्व प्रतिभा सम्पन्न कवि का कमनीय किशोर रूप यहाँ मिलता है। ग्रीष्म और वर्षा के वर्णनों में ओजोगुण की दुर्लभ अभिव्यक्ति ऋतुसंहार के कवि ने की है। राजा के समान घनागम (वर्षा) के आगमन का रूपक तदनुरूप ओजस्वी बन्ध में बाँधा गया है–

ससीकराम्भोधरमत्तकुञ्जरस्तडित्पताकाशनिशब्दमर्दलः।
समागतो राजवदुद्धतद्युतिर्घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये।

मेघ ही इस राजा के मतवाले हाथी हैं, बिजलियाँ उसकी पताकाएँ है, मेघ का गर्जन उसका मर्दल है। परवर्ती काव्यों में प्राप्त कालिदास की अनेक अभिव्यक्तियों का पूर्वाभास भी ऋतुसंहार में है। मेघ के लिए गर्भवती प्रमदा के

उरोज का उपमान मेघदूत तथा रघुवंश में प्रकारांतर से पुनरावृत्त हुआ है। इसी प्रकार बिजली की कौंध में अभिसारिकाओं का मार्ग देख पाने के दृश्य को भी कवि ने मेघदूत में फिर से बाँधा है। शरद वर्णन में कोविदार वृक्ष के चित्रण में यमक का बन्ध रघुवंश के नवम सर्ग के यमक-बन्धों की स्मृति करा देता है-

मत्तद्विरेफपरिपीतमधुप्रसेकश्चित्तं विदारयति कस्य न कोविदारः।

शरद ऋतु के वर्णन में तो कवि कल्पनाओं की उज्ज्वलता देखते ही बनती है। शरद ऋतु का पदार्पण रमणीय नववधु के समान होता है। पके हुए धान से सुन्दर एवं झुके हुए शरीर वाली तथा खिले हुए कमलों के मुखवाली शरद ऋतु काश-पुष्पं का उज्ज्वल वस्त्र धारण किये हुए, मतवाले हंसों के कलरवों का नूपुर पहने हुए अवतरित होती है-

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या।

कवि ने यहाँ रूपक (काशांशुका आदि प्रथम तीन विशेषण) उत्प्रेक्षा तथा उपमा की उत्कृष्ट संसृष्टि प्रस्तुत की है। इसी प्रकार नैसर्गिक सौन्दर्य को कृत्रिम या मानवीय सौन्दर्य से अधिक मनोहर बताते हुए व्यतिरेक के प्रयोग के साथ वह कहता है कि रमणियों की मनोरम चाल को हंसों ने, उनके चन्द्रमा जैसे मुख की शोभा को खिले हुए कमलों ने, मदभरी मधुर चितवन को नील कमलों ने और भौंहो के विलास को सूक्ष्म लहरोयों ने जीत लिया है।

हंसैर्जिता सुललिता गतिररङ्गनानामम्भोरुहैर्विकसितैर्मुखचन्द्रकांतिरू।
नीलोत्पलैर्मदकलानि विलोकितानि भ्रूविभ्रमाश्च रुचिरास्तनुभिस्तरङ्गैः।

ऋतुसंहार महाकवि कालिदास की प्रथम काव्य रचना मानी जाती है, जिसके छह सर्गो में ग्रीष्म से आरंभ कर वसंत तक की छह ऋतुओं का सुंदर प्रकृतिचित्रण प्रस्तुत किया गया है। ऋतुसंहार का कलाशिल्प महाकवि की अन्य कृतियों की तरह उदात्त न होने के कारण इसके कालिदास की कृति होने के विषय में संदेह किया जाता रहा है।

टीका

मल्लिनाथ ने इस काव्य की टीका नहीं की है तथा अन्य किसी प्रसिद्ध टीकाकार की भी इसकी टीका नहीं मिलती है। जे. नोबुल तथा प्रो.ए.बी. कीथ ने अपने लेखों में ऋतुसंहार को कालिदास की ही 'प्रामाणिक एवं प्रथम रचना' सिद्ध किया है। इस खंडकाव्य में कवि ने अपनी प्रिया को संबोधित कर छहों

ऋतुओं का वर्णन किया है। प्रकृति के आलंबनपरक तथा उद्दीपनपरक दोनों तरह के रमणीय चित्र काव्य की वास्तविक आत्मा हैं।

सर्वप्रथम संपादन

ऋतुसंहार का सर्वप्रथम संपादन कलकत्ता से सन् 1792 में 'सर विलियम जोन्स' ने किया था। सन् 1840 में इसका एक अन्य संस्करण पी.फॉन बोलेन द्वारा लातीनी तथा जर्मन पद्यानुवाद सहित प्रकाशित किया गया था। 1906 में 'निर्णयसागर प्रेस' से यह रचना मणिराम की संस्कृत टीका के साथ छपी थी, जिसके अब तक अनेक संस्करण हो चुके हैं।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्

अभिज्ञान शाकुन्तलम् न केवल संस्कृत साहित्य का, अपितु विश्वसाहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। यह कालिदास की अन्तिम रचना है। इसके सात अंकों में राजा दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रणय-कथा का वर्णन है। इसका कथानक महाभारत के आदि पर्व के शकुन्तलोपाख्यान से लिया गया है। कण्व के माध्यम से एक पिता का पुत्री को दिया गया उपदेश आज 2, 000 वर्षों के बाद भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना उस समय में था। भारतीय आलोचकों ने 'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला' कहकर इस नाटक की प्रशंसा की है। भारतीय आलोचकों के समान ही विदेशी आलोचकों ने भी इस नाटक की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। जब सन् 1791 में जार्जफोस्टर ने इसका जर्मनी में अनुवाद किया, तो उसे देखकर जर्मन विद्वान् गेटे इतने गद्‌गद हुए कि उन्होंने उसकी प्रशंसा में एक कविता लिख डाली थी।

कथावस्तु

कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् की कथावस्तु मौलिक नहीं चुनी। यह कथा महाभारत के आदिपर्व से ली गई है। पद्मपुराण में भी शकुंतला की कथा मिलती है और वह महाभारत की अपेक्षा शकुन्तला की कथा के अधिक निकट है। इस कारण विन्टरनिट्ज ने यह माना है कि शकुन्तला की कथा पद्मपुराण से ली गई है। परन्तु विद्वानों का कथन है कि पद्मपुराण का यह भाग शकुन्तला की रचना के बाद लिखा और बाद में प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। महाभारत की कथा में दुर्वासा के शाप का उल्लेख नहीं है। महाभारत का दुष्यन्त से यदि ठीक उलटा

नहीं, तो भी बहुत अधिक भिन्न है। महाभारत की शकुन्तला भी कालिदास की भांति सलज्ज नहीं है। वह दुष्यन्त को विश्वामित्र और मेनका के सम्बन्ध के फलस्वरूप हुए अपने जन्म की कथा अपने मुंह से ही सुनाती है। महाभारत में दुष्यन्त शकुन्तला के रूप पर मुग्ध होकर शकुन्तला से गांधर्व विवाह की प्रार्थना करता है, जिस पर शकुन्तला कहती है कि मैं विवाह इस शर्त पर कर सकती हूं कि राजसिंहासन मेरे पुत्र को ही मिले। दुष्यन्त उस समय तो स्वीकार कर लेता है और बाद में अपनी राजधानी में लौटकर जान-बूझकर लज्जावश शकुन्तला को ग्रहण नहीं करता। कालिदास ने इस प्रकार अपरिष्कृत रूप में प्राप्त हुई कथा को अपनी कल्पना से अद्‌भुत रूप में निखार दिया है। दुर्वासा के शाप की कल्पना करके उन्होंने दुष्यन्त के चरित्र को ऊंचा उठाया है। कालिदास की शकुन्तला भी आभिजात्य, सौंदर्य और करुणा की मूर्ति है। इसके अतिरिक्त कालिदास ने सारी कथा का निर्वाह, भावों का चित्रण इत्यादि जिस ढंग से किया है, वह मौलिक और अपूर्व है।

❐❐❐